मुकदमों का विवरण

सीबीआई

वी.

आर. आर. किशोर

(2007 की आपराधिक अपील सं. 377) 11 सितंबर, 2023

[संजय किशन कौल**,** संजीव खन्ना**,** अभय एस**.** ओका**,** विक्रम नाथ और जे**.** के**.** माहेश्वरी**,** जे**.** जे**.]**

हेडनोट्स

विचार के लिए मुद्देः

दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान अधिनियम, 1946 (डी. एस. पी. ई. अधिनियम) की धारा 6 ए (1) के तहत भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के तहत वरिष्ठ सरकारी अधिकारियों द्वारा किए गए किसी भी अपराध की जांच या जांच करने के लिए केंद्र सरकार की मंजूरी की आवश्यकता होती है और ऐसे अधिकारियों को एक तरह की छूट प्रदान की जाती है।भारत के संविधान के अनुच्छेद 20 के संदर्भ में, क्या न्यायालय के निर्णय के पूर्वव्यापी संचालन से ऐसी प्रतिरक्षा से वंचित किया जा सकता है, यह वर्तमान मामले में निर्धारण के लिए एक विवादास्पद प्रश्न था।

सवाल यह था कि क्या सुब्रमण्यम स्वामी बनाम सुब्रमण्यम स्वामी के मामले में उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा की गई घोषणा।

निदेशक, केंद्रीय जांच ब्यूरो और दूसरा, कि धारा 6 ए

डी. एस. पी. ई. अधिनियम के असंवैधानिक होने के कारण, इसे संविधान के अनुच्छेद 20 के संदर्भ में पूर्वव्यापी रूप से लागू किया जा सकता है।निम्नलिखित तीन आनुषंगिक प्रश्न भी विचार के लिए उठे अर्थात्ःचाहे डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए प्रक्रिया का हिस्सा थी या उसने कोई दोषसिद्धि या सजा दी थी; क्या डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए को असंवैधानिक घोषित करने के संदर्भ में संविधान के अनुच्छेद 20 (1) का कोई संबंध या प्रासंगिकता थी और क्या डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए को असंवैधानिक और संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करने वाला घोषित करने का प्रभाव पूर्वव्यापी होगा या इसकी असंवैधानिक घोषणा की तारीख से संभावित रूप से लागू होगा।

1

2

दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना अधिनियम**, 1946 (**डीएसपीई अधिनियम**) -**एस**. 6** ए**-**प्रक्रिया का एक हिस्सा या एक दोषसिद्धि या सजा की प्रकृति।

आयोजित किया गयाःडी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए किसी भी अपराध के लिए किसी भी दोषसिद्धि को निर्धारित या पेश नहीं करती है-यह केवल एक प्रक्रियात्मक सुरक्षा है जो डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए में भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के तहत अपराध की जांच या जांच करने के संबंध में गणना की गई है-डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए भी किसी सजा को निर्धारित नहीं करती है और न ही यह अपराध के लिए किसी मौजूदा सजा को बदलती है -डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए केवल वरिष्ठ सरकारी कर्मचारियों को सुरक्षा के रूप में प्रक्रिया का एक हिस्सा है-इसमें कोई नई छूट नहीं दी जाती है और न ही यह सजा या सजा को बढ़ाती है।[पैरा 23 और 24]

भारत का संविधान**-Art.20-s** के संदर्भ में लागू होना।**6** दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना अधिनियम**, 1946**।

आयोजित किया गयाःसंविधान के अनुच्छेद **20 (1)** में डी**.** एस**.** पी**.** ई**.** अधिनियम की धारा **6** ए की वैधता या अयोग्यता के लिए कोई प्रयोज्यता नहीं है। **[**पैरा **36]**

दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना अधिनियम**, 1946 -**एस**. 6** ए**-**एस की घोषणा।**6** ए के रूप में असंवैधानिक**-**क्या इसका पूर्वव्यापी प्रभाव होगा या असंवैधानिक के रूप में इसकी घोषणा की तारीख से संभावित रूप से लागू होगा**-**भारत का संविधान**-**अनुच्छेद **13 (2)** और भाग **III**।

आयोजित किया गयाःएक बार जब किसी कानून को असंवैधानिक घोषित कर दिया जाता है, जो संविधान के भाग-3 का उल्लंघन करता है, तो इसे संविधान के अनुच्छेद 13 (2) और आधिकारिक घोषणाओं द्वारा इसकी व्याख्या को देखते हुए शुरू से ही अमान्य, अभी भी पैदा हुआ, अप्रवर्तनीय और अप्रवर्तनीय माना जाएगा-इस प्रकार, सुब्रमण्यम स्वामी के मामले में संविधान पीठ द्वारा की गई घोषणा का पूर्वव्यापी संचालन होगा-डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए को इसके शामिल होने की तारीख से लागू नहीं माना जाता है।[पैरा 43]

भारत का संविधान**-Art.20 (1)-**पूर्वव्यापी पूर्व पोस्ट फैक्टो कानून से संरक्षण**-**समझाया गया।

आयोजित किया गयाःसंविधान के अनुच्छेद 20 के उप-अनुच्छेद (1) में दो भाग हैं-पहला भाग किसी भी कानून को प्रतिबंधित करता है जो पूर्वव्यापी प्रभाव वाले कानून के उल्लंघन के लिए न्यायिक सजा निर्धारित करता है।संविधान के अनुच्छेद 20 का उप-अनुच्छेद (1) नागरिक दायित्व पर लागू नहीं होता है, जैसा कि आपराधिक अपराध के लिए सजा से अलग है-इसके अलावा, जो निषिद्ध है वह है दोषसिद्धि 3

या किसी पूर्व-कार्योत्तर कानून के तहत किसी भी अपराध के लिए सजा, हालांकि मुकदमा स्वयं निषिद्ध नहीं है-एक ऐसी प्रक्रिया के तहत मुकदमा, जो उस समय से अलग है जब अपराध के समय, या उस समय से अलग अदालत द्वारा, जब अपराध किया गया था, संविधान के अनुच्छेद 20 के उप-अनुच्छेद (1) के उल्लंघन के कारण असंवैधानिक नहीं है-यह अलग हो सकता है, अगर प्रक्रिया या मुकदमा संविधान के अनुच्छेद 14 के तहत भेदभाव या किसी अन्य मौलिक अधिकार के उल्लंघन के कारण चुनौती योग्य है-संविधान के अनुच्छेद 20 के उप-अनुच्छेद (1) के पहले भाग के तहत अधिकार एक बहुत ही मूल्यवान अधिकार है, जिसकी अदालतों द्वारा सुरक्षा और संरक्षण किया जाना चाहिए।[पैरा 27 और 28]

भारत का संविधान**-Art.13-**शब्द "शून्य"**-**शब्दों और वाक्यांशों की व्याख्या और अर्थ।

आयोजित किया गयाःअनुच्छेद 13 (1) के तहत संविधान के प्रारंभ से पहले के सभी मौजूदा कानून, जहां तक वे भाग-3 के प्रावधानों के साथ असंगत हैं, विसंगति की सीमा तक अमान्य होंगे-इसके अलावा, अनुच्छेद 13 (2) के अनुसार, राज्य को ऐसा कोई भी कानून बनाने से प्रतिबंधित किया गया है जो भाग-3 द्वारा प्रदत्त अधिकारों को छीनता है या कम करता है और आगे यह कि इस खंड का उल्लंघन करते हुए बनाया गया कोई भी कानून उल्लंघन की सीमा तक अमान्य होगा-अनुच्छेद 13 (2) किसी भी कानून को बनाने से मना करता है ताकि यह संविधान के प्रारंभ के बाद बनाए गए कानूनों से संबंधित हो, जैसा कि वर्तमान मामले में है-जैसा कि यह माना गया है कि डीएसपीई अधिनियम की धारा 6 ए संविधान के भाग-3 के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करती है।

और 'अप्रवर्तनीय'।[पैरा 41]

शहरों और अन्य संदर्भों की सूची

सुब्रमण्यम स्वामी बनाम निदेशक, केंद्रीय जांच ब्यूरो और

एक और (2014) 8 एससीसी 682:[2014] 6 एससीआर 873-स्पष्टीकरण संस्करण।

केशवन माधव मेनन बनाम बॉम्बे राज्य [1951] एससीआर 228; बेहराम खुर्शीद पेसिकाका बनाम बॉम्बे राज्य [1955] 1 एससीआर 613; राव शिव बहादुर सिंह और एक अन्य बनाम विंध्य प्रदेश राज्य [1953] एससीआर 1188; मणिपुर राज्य और अन्य। वी.सूरजकुमार ओकराम और अन्य। 2022 तक

सी. बी. आई बनाम आर. आर. किशोर सर्वोच्च न्यायालय रिपोर्ट [2023] 13 एस. सी. आर.

एस. सी. सी. ऑनलाइन एस. सी. 130; महेंद्र लाल जैनी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और

अन्य एआईआर 1963 एससी 1019:[1963] 1 पूरक।एस. सी. आर. 912; दीप चंद बनाम द

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य [1959] 2 एस. सी. आर. पूरक।8 और एम. पी. वी. सुंदररामियर एंड कंपनी बनामआंध्र प्रदेश राज्य और एक अन्य

[1958] एस. सी. आर. 1422-पर निर्भर।

सज्जन सिंह बनाम पंजाब राज्य [1964] 4 एससीआर 630; भारत संघ बनाम सुकुमार पाइन [1966] 2 एससीआर 34; नगर समिति, अमृतसर और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य (1969) 1 एससीसी 475:[1969] 3 एससीआर 447; आई. सी. गोलकनाथ और अन्य बनामपंजाब और अन्न राज्य। [1967] 2 एससीआर 762; प्रबंध निदेशक, ईसीआईएल, हैदराबाद और अन्य

वी.बी. करुणाकर और अन्य (1993) 4 एससीसी 727:[1993] 2 पूरक।एससीआर

576; एम. ए. मूर्ति बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य (2003) 7 एससीसी 517:[2003] 3 पूरक।एससीआर 327; ए. पी. का पारेषण निगम बनाम

सी. एच. प्रभाकर और अन्य (2004) 5 एस. सी. सी. 551:[2004] 2 पूरक।एससीआर

759; मनदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य (2014) 3 एस. सी. सी. 92:[2014] 2 एस. सी. आर. 1; एच. ऋषभ और इंदर सिंह बनाम दिल्ली राज्य [1955] 1 एस. सी. आर. 1150; फर्टिको मार्केटिंग एंड इन्वेस्टमेंट प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो और दूसरा (2021) 2 एस. सी. सी. 525:[2020] 12 एस. सी. आर. 956; रट्टीराम और अन्य बनाम मध्य राज्य

प्रदेश (2013) 12 एस. सी. सी. 316:[2013] 2 एससीआर 1003; कर्नाटक राज्य

बनाम कुप्पुस्वामी गोंडर और अन्य ए. आई. आर. 1987 एस. सी. 1354:[1987] 2 एससीआर 295; ए. सी. शर्मा बनाम दिल्ली प्रशासन (1973) 1 एससीसी 726:[1973] 3 एस. सी. आर. 477; अशोक कुमार गुप्ता और एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य।

और अन्य (1997) 5 एससीसी 201:[1997] 3 एस. सी. आर. 269; सहायक आबकारी

आयुक्त, कोट्टायम और अन्य बनाम एस्तप्पन चेरियन और एक अन्य 2021 (10) स्केल 308; प्रभु दयाल देवराह बनाम जिला मजिस्ट्रेट (1994) 1 एस. सी. सी. 103; मोहन लाल बनाम पंजाब राज्य (2018) 17 एस. सी. सी. 627:[2018] 9 एससीआर 1006; वरिंदर कुमार बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य

(2020) 3 एससीसी 321:[2019] 2 एस. सी. आर. 707; राव शिव बहादुर सिंह बनाम विंध्य प्रदेश राज्य (1953) 2 एस. सी. सी. 111:[1954] एस. सी. आर. 1098; टी. बरई बनाम हेनरी आह हो, (1983) 1 एस. सी. सी. 177:[1983] 1 एस. सी. आर. 905; प्रताप सिंह बनाम झारखंड राज्य (2005) 3 एस. सी. सी. 551:[2005] 1 एससीआर 1019;

बॉम्बे राज्य बनाम एफ. एन. बलसारा [1951] 1 एस. सी. आर. 682; विनीत नारायण और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (1998) 1 एस. सी. सी. 226:[1997] 6 पूरक। एससीआर 595; पश्चिम बंगाल राज्य बनाम एस. के. घोष [1963] 2 एससीआर 111; रतन लाल बनाम पंजाब राज्य [1964] 7 एससीआर 676; जी. पी. नय्यर बनाम.

राज्य (दिल्ली प्रशासन) (1979) 2 एससीसी 593:[1979] 2 एससीआर 816; 5

सोनी देवराजभाई बाबूभाई बनाम गुजरात राज्य और अन्य (1991) 4 एस. सी. सी. 298: [1991] 3 एस. सी. आर. 812 और भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड

बनाम अजय अग्रवाल (2010) 3 एससीसी 765:[2010] 3 एस. सी. आर. 70-संदर्भित।

होप बनाम यूटा क्षेत्र के लोग 110 यू. एस. 574 (1884); डंकन बनाम राज्य 152 यू. एस. 377 (1894); गिब्सन बनाम मिसिसिपी 162 यू. एस. 565 (1896); थॉम्पसन बनाम मिसौरी राज्य 171 यू. एस. 380 (1898); जॉन मैलेट बनाम उत्तरी कैरोलिना राज्य 181 यू. एस. 589 (1901); जॉन रूनी बनाम उत्तरी डकोटा राज्य 196 यू. एस. 319 (1905); बीज़ेल बनाम ओहियो राज्य चैटफील्ड 269 यू. एस.

167 (1925); डॉबर्ट बनाम फ्लोरिडा 432 यू. एस. 282 (1977); स्मिथ और अन्य बनाम डो

एट अल 538 यू. एस. 84 (2003); कैसर एल्यूमीनियम एंड केमिकल कॉर्पोरेशन

बनाम बोंजोर्नो 494 यूएस 827 (1990); फिलिप्स बनाम आयर (1870) एलआर 6 क्यूबी 1 और काल्डर बनाम बुल 1 एल एड 648:3 यू. एस. (3 डेल) 386 (1798)-संदर्भित।

अन्य मामलों के विवरणों में आयातित आदेश और आवेदन शामिल हैं

आपराधिक अपील न्यायनिर्णयः2007 की आपराधिक अपील सं. 377।

2006 के सी. आर. एल. आर. No.366 में नई दिल्ली में दिल्ली उच्च न्यायालय के दिनांकित 05.10.2006 निर्णय और आदेश से।

के साथ

2023 की आपराधिक अपील संख्या 2763।

रूपः

तुषार मेहता, एस. जी., एस. वी. राजू, ए. एस. जी., अरविंद दातार, अमित देसाई, अरुणाभ चौधरी, वरिष्ठ अधिवक्ता।, अंकुर तलवार, रजत नायर, आशुतोष घाड़े, सुश्री साइरिका एस. राजू, अन्नम वेंकटेश, कानू अग्रवाल, श्रीयश यू. ललित, नकुल चेंगप्पा के. के., शांतनु शर्मा, माधव सिंहल, प्रत्यूष श्रीवास्तव, भुवन कपूर, ए. के. शर्मा, अंकुर चावला, भानु सूद, आमिर खान, शिवम टंडन, राहुल उन्नी कृष्णन, प्रणव डिश, आरुष मटलोटिया, सर्वेश सिंह बघेल, सुश्री कल्याणी लाल, जयंत मोहन, मोहित गुप्ता, करण कुमार गोगना, अक्षय साहनी, सुश्री पल्लवी लंगर, सुश्री प्रेरणा महाजन, आशीष झा, हिमांशु त्यागी,उपस्थित दलों के लिए।

डॉ. आर. आर. किशोर, व्यक्तिगत रूप से उत्तरदाता।

सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय/आदेश

न्याय

विक्रम नाथ**,** जे।

सीआरएल। अपील **No.377/2007** करें।

1. इस संविधान पीठ का गठन इस बात पर विचार करने के लिए किया गया है कि क्या इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा की गई घोषणा,

सुब्रमण्यम स्वामी बनाम निदेशक**,** केंद्रीय जांच ब्यूरो और

अन्य 1, कि दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान अधिनियम, 1946 की धारा 6 ए 2 असंवैधानिक होने के कारण, संविधान के अनुच्छेद 20 के संदर्भ में पूर्वव्यापी रूप से लागू की जा सकती है।

2. इस मामले के उद्देश्यों के लिए प्रासंगिक आवश्यक तथ्य नीचे दिए गए हैंः

2.1 अपीलार्थी-केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो 3 02 पर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के बादः00 भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 4 के तहत आई. डी. 1 पर पी. एम. ने उसी दिन शाम को एक जाल बिछाया जिसमें कहा जाता है कि प्रत्यर्थी ने प्रसव पूर्व नैदानिक तकनीक (विनियमन और दुरुपयोग की रोकथाम) अधिनियम, 1994 के उल्लंघन में भ्रूण के लिंग का निर्धारण करने के लिए प्रसव पूर्व परीक्षण करने वाले रेडियोलॉजिस्ट के लिए चीजों को सही करने

के लिए रिश्वत स्वीकार की थी।प्रत्यर्थी ने अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर आरोपमुक्त करने के लिए आवेदन किया कि जाल जो जांच/जांच का एक हिस्सा था, केंद्र सरकार की पूर्व मंजूरी के बिना बिछाया गया था जैसा कि डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6ए के तहत प्रदान किया गया था। 2. 2.विशेष न्यायाधीश, सी. बी. आई. ने 30.04.2006 के आदेश के माध्यम से आरोपमुक्त करने के आवेदन को खारिज कर दिया, जिसे उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण में लिया गया था और 2006 की आपराधिक पुनरीक्षण याचिका No.366 के रूप में दर्ज किया गया था।उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने दिनांक 05.10.2006 के फैसले के माध्यम से विचार के लिए तीन प्रश्न तैयार किए, अर्थात्ः

1 (2014) 8 एस. सी. सी. 682 2 संक्षेप में 'डी. एस. पी. ई. अधिनियम' 3 संक्षेप में 'सी. बी. आई.'

4 संक्षेप में "पीसी अधिनियम, 1988"

1. डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6ए के संबंध में क्या पृष्ठभूमि है?2. क्या सी. बी. आई. ने धारा 6ए (1) का उल्लंघन किया?

3. यदि हां, तो क्या इसका मतलब यह है कि एक अवैध जांच के परिणामस्वरूप पूरा मुकदमा दूषित हो गया है?

इसने प्रत्यर्थी के पक्ष में प्रश्न संख्या 2 का उत्तर दिया और प्रश्न संख्या 3 के संबंध में सक्षम प्राधिकारी के लिए निर्णय लेने और पुनः जांच के साथ आगे बढ़ने और मंजूरी नहीं दिए जाने की स्थिति में विशेष न्यायाधीश, सी. बी. आई. को मामले को बंद करने के लिए सूचित करने के लिए खुला छोड़ दिया।आदेश का कार्यात्मक भाग निर्णय के पैराग्राफ 29 में है जिसे नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया हैः

“29. यह इस प्रकार है कि यदि मुकदमे के प्रारंभिक चरण में, जांच की अवैधता को अदालत के संज्ञान में लाया जाता है और फिर भी निचली अदालत सुनवाई जारी रखती है, तो ऐसी कार्यवाही उच्च न्यायालय द्वारा अपने पुनरीक्षण अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए दरकिनार की जा सकती है।इस मामले में, उपरोक्त चर्चा को देखते हुए, यह स्पष्ट है कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 6 ए (1) के प्रावधान अनिवार्य हैं और केवल निर्देशिका नहीं हैं। इस तरह के प्रावधानों के उल्लंघन में की गई जांच, इसलिए, एक वैधानिक आवश्यकता का उल्लंघन करते हुए, स्पष्ट रूप से अवैध है।याचिकाकर्ता की ओर से दायर आरोपमुक्त करने के आवेदन को खारिज करने का मतलब है कि मुकदमा जारी रहेगा।उपरोक्त चर्चा को देखते हुए इसकी अनुमति नहीं दी जा सकती है।क्योंकि, तब अदालत जांच में अवैधता के प्रति आंखें मूंद लेगी और बहरे कान लगाएगी, जिसे जल्द से जल्द उसके संज्ञान में लाया गया है।हालांकि, इसका यह भी मतलब नहीं है कि याचिकाकर्ता आरोपमुक्त होने और उसके खिलाफ मामले को बंद करने का हकदार है।जैसा कि रिशबुद के मामले और मुबारक अली के मामले में बताया गया

है, उक्त अधिनियम की धारा 6 ए के प्रावधानों के संदर्भ में पुनः जांच का आदेश दिया जाना है। जबकि मामले को विशेष न्यायाधीश के समक्ष लंबित रखा जाना है, जांच के लिए केंद्र सरकार की मंजूरी ली जानी है।यदि मंजूरी दी जाती है तो निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार मामले की फिर से जांच की जाएगी और इस तरह की फिर से जांच में एकत्र की गई सामग्री को कानून के अनुसार आगे की कार्यवाही के लिए विशेष न्यायाधीश के समक्ष रखा जाएगा।यदि केंद्र सरकार द्वारा मंजूरी नहीं दी जाती है, तो उसे विशेष न्यायाधीश को सूचित किया जाएगा जो तब मामले को बंद कर देंगे।"

2.3.दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले से व्यथित महसूस करते हुए सी. बी. आई. ने वर्तमान अपील को इस आधार पर प्राथमिकता दी है कि डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए (2) लागू होगी न कि इसकी धारा 6 ए (1)।उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में गलती की कि धारा 6 ए (1) लागू थी।

2.4.उक्त अपील 2007 से लंबित है।अपील के लंबित रहने के दौरान डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए (1) को सुब्रमण्यम स्वामी (उपरोक्त) के मामले में संविधान पीठ द्वारा दिनांक 1 के फैसले के माध्यम से अमान्य और संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन माना गया था।उक्त रिपोर्ट का पैरा 99, जो उपरोक्त घोषणा करता है, नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया हैः

"99. हमारी पूर्वगामी चर्चा को ध्यान में रखते हुए, हम मानते हैं कि धारा 6 ए (1), जिसके लिए पी. सी. अधिनियम, 1988 के तहत किए गए किसी भी अपराध की कोई भी जांच या जांच करने के लिए केंद्र सरकार की मंजूरी की आवश्यकता होती है, जहां ऐसा आरोप संबंधित हैः(क) केंद्र सरकार के संयुक्त सचिव और उससे ऊपर के स्तर के कर्मचारी, और (ख) ऐसे अधिकारी जो केंद्र सरकार द्वारा किसी केंद्रीय अधिनियम, सरकारी कंपनियों, समितियों और उनके स्वामित्व या नियंत्रण वाले स्थानीय अधिकारियों द्वारा या उनके तहत स्थापित निगमों में नियुक्त किए जाते हैं।

सरकार अमान्य है और संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करती है।

एक आवश्यक परिणाम के रूप में, 2003 के अधिनियम 45 की धारा 26 (सी) में निहित प्रावधान को भी उस हद तक अमान्य घोषित किया जाता है।"

3. संविधान पीठ ने यह निर्णय नहीं लिया कि क्या डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए. (1) की संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करने वाली घोषणा पूर्वव्यापी प्रभाव वाली होगी या यह संभावित रूप से लागू होगी।4. अपील पर कई मौकों पर विचार किया गया और दोनों पक्षों ने बहस की।उक्त घोषणा की पूर्वव्यापी या संभावित प्रयोज्यता के संबंध में निर्णयों पर भरोसा करते हुए, अपीलकर्ता-सी. बी. आई. प्रस्तुत करेगा कि एक बार धारा 6 ए (1) को

अनुच्छेद 14 का उल्लंघनकारी घोषित किए जाने के बाद, उच्च न्यायालय के फैसले को दरकिनार किया जाना चाहिए और अभियोजन पक्ष को आरोपमुक्त करने के आवेदन की अस्वीकृति के चरण से कार्यवाही जारी रखने की अनुमति दी जानी चाहिए।दूसरी ओर, प्रत्यर्थी प्रस्तुत करेगा कि

सुब्रमण्यम स्वामी (उपरोक्त) के मामले में निर्णय नहीं हो सका था

कोई भी पूर्वव्यापी कार्रवाई और इसलिए, उच्च न्यायालय के फैसले में कोई दोष नहीं पाया जा सकता है और अपील खारिज की जानी चाहिए।

5. एक विशेष स्तर पर, इस न्यायालय ने महसूस किया कि भारत संघ को एक पक्ष बनाया जाना चाहिए और इसकी सुनवाई की जानी चाहिए।तदनुसार इसने स्वतः संज्ञान लेते हुए 27.04.2012 दिनांकित आदेश के माध्यम से नोटिस जारी किए और भारत संघ को एक शपथ पत्र दाखिल करने की आवश्यकता थी।भारत संघ ने 05.10.2012 दिनांकित एक शपथ पत्र का नेतृत्व किया।हालाँकि, इसे 29.01.2013 दिनांकित आदेश द्वारा वापस लेने की अनुमति दी गई थी।इसके बाद, भारत संघ ने फरवरी, 2013 में एक और एफ. आई. डी. आई. का नेतृत्व किया।इसके बाद इस मामले को आई. डी. 1 पर उठाया गया जब इस न्यायालय ने प्रतिद्वंद्वी पक्षों द्वारा प्रस्तुत दलीलों को दर्ज करने और प्रश्न के महत्व पर विचार करने के बाद और इस तथ्य पर भी कि सुब्रमण्यम स्वामी (उपरोक्त) के मामले में फैसले की पूर्वव्यापीता या संभावना को केवल एक संविधान पीठ द्वारा देखा जा सकता है, निर्देश दिया कि मामले को एक उपयुक्त पीठ के गठन के लिए प्रशासनिक पक्ष में भारत के मुख्य न्यायाधीश के समक्ष रखा जाए। दिनांकित 10.03.2016 आदेश के पैराग्राफ 7 ने निर्धारण के लिए प्रश्न तैयार किया और इसे नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया हैः

“7. ऊपर निकाले गए धारा 6ए (1) के प्रावधानों से संकेत मिलता है कि संयुक्त सचिव के स्तर के अधिकारियों के लिए और एक प्रकार की प्रतिरक्षा से ऊपर

प्रदान किया गया है।क्या भारत के संविधान के अनुच्छेद **20** के संदर्भ में**,** न्यायालय के निर्णय के पूर्वव्यापी संचालन द्वारा ऐसी प्रतिरक्षा से वंचित किया जा सकता है**,** यह वर्तमान मामले में निर्धारण के लिए एक विवादास्पद प्रश्न है।**”**

6. चूंकि संदर्भ का आदेश भी आवश्यक तथ्यों और इस मुद्दे को संविधान पीठ को भेजने के कारणों से संबंधित है, इसलिए दिनांक 1 के पूर्ण आदेश को पुनः प्रस्तुत करना उचित होगा।वह इस प्रकार हैः

“1. दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान अधिनियम, 1946 की धारा 6ए (1) में निहित प्रावधानों के आधार पर प्रतिवादी अभियुक्त द्वारा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के तहत एक

अभियोजन की मांग की गई थी, जिसे वर्ष 2003 में एक संशोधन द्वारा लाया गया था।दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान अधिनियम, 1946 की धारा 6ए (1) निम्नलिखित शब्दों में हैः

“6A. जाँच या जाँच करने के लिए केंद्र सरकार की स्वीकृति।-(1) दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49) के तहत कथित रूप से किए गए किसी भी अपराध की कोई जांच या जांच नहीं करेगा, सिवाय इसके कि केंद्र की पूर्व मंजूरी के।

सरकार जहां ऐसा आरोप संबंधित है-(ए) संयुक्त सचिव और उससे ऊपर के स्तर के केंद्र सरकार के कर्मचारी; और (बी) ऐसे अधिकारी जो केंद्र सरकार द्वारा किसी केंद्रीय अधिनियम, सरकारी कंपनियों, समितियों और उस सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण वाले स्थानीय प्राधिकरणों द्वारा या उसके तहत स्थापित निगमों में नियुक्त किए जाते हैं।”

2. दिल्ली उच्च न्यायालय, जिसके समक्ष चुनौती पेश की गई थी, ने यह अभिनिर्धारित करते हुए प्रश्न का उत्तर दिया कि प्रतिवादी अभियुक्त उक्त प्रावधान के लाभ का हकदार है।तदनुसार, उच्च न्यायालय का विचार था कि दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान अधिनियम, 1946 की धारा 6ए (1) के तहत पूर्व अनुमोदन देने के लिए मामले पर नए सिरे से विचार करने की आवश्यकता है। पीड़ित, सी. बी. आई. हमारे समक्ष अपील में है।3. हमने पक्षों के विद्वान वकीलों के साथ-साथ व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने वाले प्रतिवादी को भी सुना है।

4. दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान अधिनियम, 1946 की धारा 6ए (1) के प्रावधानों को सुब्रमण्यम स्वामी बनाम निदेशक, केंद्रीय जांच ब्यूरो और एक अन्य [(2014) 8 एससीसी 682] मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करते हुए असंवैधानिक माना गया है।संविधान पीठ का निर्णय हालांकि इस बारे में चुप है कि क्या इसका निर्णय संभावित रूप से काम करेगा या इसका प्रभाव पूर्वव्यापी होगा।यद्यपि बार में हमें उपरोक्त विचारों में से किसी एक को लेने के लिए राजी करने के लिए बड़ी संख्या में उदाहरणों का हवाला दिया गया है, जैसा कि प्रतिद्वंद्वी दलों के मामले का समर्थन करेगा, हमारा विचार है कि इस प्रश्न पर भारत के संविधान के अनुच्छेद 145 (3) के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए संविधान पीठ का विचार किया जाना चाहिए।

5. वास्तव में, ए. पी. के पारेषण निगम बनाम सी. एच. प्रभाकर और अन्य [(2004) 5 एस. सी. सी. 551], हमारे सामने जो सटीक सवाल उठा है, उसे संविधान पीठ को भेजा गया था। उक्त प्रश्न से संबंधित अनुच्छेद 15 और 21 इस प्रकार हैंः

“15. क्या अनुच्छेद 20 के खंड (1) में निहित संवैधानिक गारंटी केवल किसी भी अपराध के लिए दोषसिद्धि के खिलाफ निषेध के लिए सीमित है, सिवाय इसके कि अधिनियम के आयोग के समय लागू कानून के उल्लंघन के लिए और 11 के अधीनता के रूप में आरोपित किया गया है।

उससे अधिक जुर्माना जो अपराध के समय लागू कानून के तहत लगाया गया हो सकता है या यह ऐसे कानून को भी प्रतिबंधित करता है जो अपराध के स्तर को बढ़ाता है या उसके लिए नए कानून के तहत वही सजा प्राप्त करना संभव बनाता है जो पूर्व कानून के तहत लगाया जा सकता था या आरोपी को किसी भी महत्वपूर्ण अधिकार या प्रतिरक्षा से वंचित करता है जो आरोप लगाए जाने के समय था, इस पर बहस की जानी चाहिए।

(रेखांकित करना हमारा है)

***

21. हालाँकि, चूंकि इन कार्यवाहियों में अनुच्छेद 20 की व्याख्या इसके दायरे और दायरे के रूप में शामिल है, इसलिए हम इस आदेश के पैरा 15 में तैयार किए गए प्रश्न को विचार के लिए एक बड़ी पीठ के पास भेजते हैं।"

हालांकि, ए. पी. के पारेषण निगम बनाम सी. एच. में संविधान पीठ। प्रभाकर और अन्य [(2010) 15 एस. सी. सी. 200] ने इस प्रश्न का उत्तर देने से इनकार कर दिया क्योंकि इस बीच विचाराधीन क़ानून में कुछ संशोधन किए गए थे और इसलिए, संदर्भित मुद्दों को अकादमिक माना जाता था।वर्तमान कार्यवाही में भी यही मुद्दे हमारे सामने रखे गए हैं।

6. हमने वर्तमान संदर्भ को इस कारण से बनाना आवश्यक समझा है कि ए. पी. के पारेषण निगम बनाम सीएच के मामले में। प्रभाकर और अन्य [(2004) 5 एस. सी. सी. 551] जिन प्रश्नों का उल्लेख किया गया है, उनमें से एक यह है कि क्या भारत के संविधान के अनुच्छेद 20 के दायरे और दायरे को पर्याप्त अधिकारों की रक्षा करने के रूप में समझा जाना चाहिए या किसी अभियुक्त को उस समय प्राप्त प्रतिरक्षा के रूप में समझा जाना चाहिए जिसके लिए उस पर आरोप लगाया गया है।

7. ऊपर निकाले गए धारा 6 ए (1) के प्रावधानों से संकेत मिलता है कि संयुक्त सचिव और उससे ऊपर के स्तर के अधिकारियों के लिए एक प्रकार की प्रतिरक्षा प्रदान की गई है।क्या भारत के संविधान के अनुच्छेद 20 के संदर्भ में, न्यायालय के निर्णय के पूर्वव्यापी संचालन द्वारा ऐसी प्रतिरक्षा से वंचित किया जा सकता है, यह वर्तमान मामले में निर्धारण के लिए एक विवादास्पद प्रश्न है।

8. उपरोक्त कारणों से और भारत के संविधान के अनुच्छेद 145 (3) के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, हम उपरोक्त प्रश्न को एक बड़ी पीठ के पास भेजते हैं, जिसके लिए अब प्रशासनिक पक्ष में भारत के माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष कागजात रखे जा सकते हैं।"

7. उपरोक्त पृष्ठभूमि में, मामले को इस पीठ के समक्ष रखा गया है और निर्दिष्ट प्रश्न पर विस्तार से सुनवाई की गई है।

एसएलपी **(**सीआरएल**) 2011** का **No.4364**

8. छुट्टी दे दी गई।

9. इस अपील का नेतृत्व अपीलार्थी ने आपराधिक मामले में पारित बॉम्बे उच्च न्यायालय के फैसले और आदेश की शुद्धता पर आरोप लगाते हुए किया है।

2010 का आवेदन No.1913, जिसका शीर्षक था मंजीत सिंह बाली बनाम केंद्रीय ब्यूरो

जाँच दिनांक 29.11.2010।उपरोक्त आदेश द्वारा, बॉम्बे उच्च न्यायालय ने पी. सी. अधिनियम, 1988 की धारा 7 और 8 के तहत याचिकाकर्ता के खिलाफ सी. बी. आई. द्वारा दर्ज प्राथमिकी को रद्द करने का अनुरोध करने वाली याचिका को खारिज कर दिया।इस मामले में, 16.02.2010 की शिकायत के आधार पर 18.02.2010 पर एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी।24.02.2010 पर छापा मारा गया, जिसके दौरान याचिकाकर्ता को गिरफ्तार किया गया और उसकी कार से नकदी बरामद की गई।इस मामले में यह भी मुद्दा है कि क्या उक्त मामले के तथ्यों में, डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए (1) लागू होगी या इसकी धारा 6 ए (2) लागू होगी।

तर्कः**ए. सी. बी. आई.** के लिएः

10. 2007 की आपराधिक अपील में अपीलार्थी-सी. बी. आई. की ओर से पेश हुए विद्वान सॉलिसिटर जनरल श्री तुषार मेहता ने विस्तृत प्रस्तुतियाँ दीं जिनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया हैः

10.1.डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए केवल एक प्रक्रियात्मक प्रावधान है और दंडात्मक प्रावधान नहीं है क्योंकि यह संविधान के अनुच्छेद 20 (1) को आकर्षित नहीं करेगा। संविधान का अनुच्छेद 20 केवल लागू कानून के उन प्रावधानों पर लागू होता है, जिनके उल्लंघन के परिणामस्वरूप दोषसिद्धि होती है और परिणामस्वरूप सजा दी जाती है।मुकदमे के दौरान वैधानिक संरक्षण जैसे प्रक्रियात्मक मुद्दों, संविधान के अनुच्छेद 20 को लागू करते समय किसी विशेष न्यायालय को मामले की सुनवाई करने के लिए प्रदान करने वाले प्रावधान का कोई असर नहीं होगा।

10.2.संविधान के अनुच्छेद 20 का यह निर्धारित करने में कोई प्रभाव नहीं होगा कि सुब्रमण्यम स्वामी के मामले में की गई घोषणा 13

(उपर्युक्त) संभावित या पूर्वव्यापी होगा।पूर्व कार्योत्तर कानून के खिलाफ संविधान के अनुच्छेद 20 के तहत प्रदान किया गया संरक्षण केवल दोषसिद्धि और सजा तक ही सीमित है और इसकी प्रक्रियात्मक पहलुओं के लिए कोई प्रासंगिकता नहीं होगी और जांच के दौरान प्रयोग की गई शक्तियों के लिए भी कोई प्रयोज्यता नहीं होगी।उन्होंने इस संबंध में निम्नलिखित पहलुओं को सूचीबद्ध कियाः(क) अनुच्छेद 20 लागू करने में सीमित है जिसमें बाद में अलग-अलग प्रावधान बनाए जाते हैं;

(ख) अनुच्छेद 20 का दूसरा पहलू अधिक दंड के उल्लंघन पर रोक लगाना है।

(ग) धारा 6 ए ने पी. सी. अधिनियम के प्रावधानों को अपराध से मुक्त नहीं किया और इसलिए उक्त प्रावधान को हटाने से कोई नया प्रावधान नहीं बनता है; (घ) धारा 6 ए ने भ्रष्टाचार विरोधी कानूनों के खिलाफ कोई पूर्ण प्रतिरक्षा प्रदान नहीं की है और इसलिए, इसे हटाने से कोई नया प्रावधान नहीं बनता है।

(ई) धारा 6 ए ने कोई निहित अधिकार नहीं बनाया जिसे अनुच्छेद 20 द्वारा कवर किया जा सकता है;

(च) धारा 6 ए को अमान्य और असंवैधानिक घोषित करना न्यायिक आदेश के माध्यम से है न कि विधायी उपाय के माध्यम से।;

10.3.उपरोक्त प्रस्तावों के समर्थन में निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा रखा गया हैः

(1) राव शिव बहादुर सिंह और एक अन्य बनाम विंध्य प्रदेश राज्य **5;**

(2) पश्चिम बंगाल राज्य बनाम एस**.** के घोष **6; (3)** सज्जन सिंह बनाम। पंजाब राज्य **7;** **(4)** रतन लाल बनाम पंजाब राज्य **8;**

(5) भारत संघ बनाम सुकुमार पाइन **9;**

5 (1953) एससीआर 1188 6 (1963) 2 एससीआर 111 7 (1964) 4 एससीआर 630 8 (1964) 7 एससीआर 676 9 (1966) 2 एससीआर 34

(6) जी**.** पी**.** नय्यर बनाम राज्य **(**दिल्ली प्रशासन**) 10;**

(7) सोनी देवराजभाई बाबूभाई बनाम गुजरात राज्य और अन्य **11; (8)** भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड बनाम अजय अग्रवाल **12;**

10.4.डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए का उल्लेख करते हुए, यह प्रस्तुत किया गया था कि यह एक दंडात्मक प्रावधान नहीं है और यह एक नया अपराध नहीं बनाता है और न ही यह एक मौजूदा अपराध के लिए दंड को बढ़ाता है, जो अपराध की तारीख पर मौजूद था।

10.5.डी. एस. पी. ई. अधिनियम में धारा 6 ए को शामिल करने से पहले, एकल निर्देश संख्या 4.7 (3) में इसी तरह का प्रावधान मौजूद था, जिसके लिए पूर्व मंजूरी की आवश्यकता थी।

जांच पड़ताल की।विनीत नारायण और अन्य बनाम संघ के मामले में यह न्यायालय।

भारत सरकार और अन्य 13, अन्य बड़े मुद्दों के बीच एकल निर्देश संख्या 4.7 (3) की वैधता का भी परीक्षण कर रहे थे।इस न्यायालय ने उक्त मामले में निर्णय दिया कि प्रशासनिक निर्देशों द्वारा वैधानिक शक्तियों में हस्तक्षेप या बाधा नहीं डाली जा सकती है।तदनुसार इसने एकल निर्देश संख्या 4.7 (3) (i) को अमान्य घोषित कर दिया।10.6.इस तरह की घोषणा के परिणामस्वरूप वर्ष 2003 में केंद्रीय सतर्कता आयोग अधिनियम, 2003 की धारा 26 (सी) के माध्यम से डी. एस. पी. ई. अधिनियम में धारा 6 ए लागू की गई थी।

10.7.डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए, निर्विवाद रूप से एक नया प्रभाव पैदा नहीं करती है और न ही यह प्रभाव को मिटाती है।संविधान पीठ में

सुब्रमण्यम स्वामी के मामले (ऊपर) में उल्लेख किया गया है कि वर्गीकरण में किया गया है

धारा 6 ए न तो सार्वजनिक शरारत को समाप्त करती है और न ही कुछ सकारात्मक सार्वजनिक भलाई को प्राप्त करती है और इसलिए, वर्गीकरण को संविधान के अनुच्छेद 14 का भेदभावपूर्ण और उल्लंघनकारी माना गया क्योंकि यह भ्रष्टाचार से निपटने के लिए पीसी अधिनियम, 1988 के मौलिक उद्देश्यों को दरकिनार करती है।

10.8.श्री मेहता ने डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए पर टिप्पणी करते हुए निम्नलिखित संक्षिप्त निष्कर्ष सूचीबद्ध किएः

(क) यह एक ऐसा प्रावधान नहीं है जिसके तहत किसी को भी दंडित किया जा सके;

10 (1979) 2 एससीसी 593 11 (1991) 4 एससीसी 298 12 (2010) 3 एससीसी 765 13 (1998) 1 एससीसी 226 15

(ख) उक्त प्रावधान ने संयुक्त सचिव के पद से ऊपर के अधिकारियों के लिए भ्रष्टाचार विरोधी कानूनों की प्रयोज्यता को छूट नहीं दी;

(ग) यह केवल एक कार्यकारी सुरक्षा तंत्र था; यह केवल एक विशेष प्रकार का प्रारंभिक सुरक्षात्मक जाल था जिसे इस माननीय न्यायालय ने असंवैधानिक घोषित कर दिया था।

(घ) उक्त प्रावधान व्यक्तिगत अधिकारों या उन्मुक्तिओं को पैदा करने का प्रयास नहीं करता था, बल्कि एक प्रावधान था, जिसका उद्देश्य सरकारी कामकाज में ईमानदार निर्णय/सलाह सुनिश्चित करने के लिए वास्तविक कार्यों की रक्षा करना था, जैसा कि सुब्रमण्यम स्वामी (ऊपर) में भारत संघ द्वारा प्रस्तुत किया गया था।

(ई) इसका उद्देश्य कानूनों के अनुप्रयोग से प्रतिरक्षा या ठोस बहिष्कार के रूप में नहीं था, बल्कि यह सुनिश्चित करने के लिए प्रदान की गई एक प्रारंभिक जांच थी कि ईमानदार अधिकारियों को अनावश्यक रूप से परेशान नहीं किया जाता है।(च) इसे मूल प्रक्रियात्मक प्रावधान नहीं कहा जा सकता है और न ही यह मूल दंडात्मक प्रावधान है।

(छ) डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए विशुद्ध रूप से तकनीकी, प्रक्रियात्मक पूर्व शर्त थी, जो प्रारंभिक प्रकृति की थी और जिसका उपयोग जांच के चरण से पहले किया जाना था।

10.9.यह तय किया गया प्रस्ताव है कि असंवैधानिकता की घोषणा किसी कानून को गैर-स्थापित, शून्य या अप्रवर्तनीय बनाती है, जैसा भी मामला हो, विधायिका के अधीन उक्त असंवैधानिकता के आधार को ठीक करने के लिए।उनके संदर्भ में इस न्यायालय के निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा रखा गया थाः

(1) केशवन माधव मेनन बनाम। बॉम्बे राज्य **14; (2)** बेहराम खुर्शीद पेसिकाका बनाम। बॉम्बे राज्य **15;**

(3) एम**.** पी**.** वी**.** सुंदररामियर एंड कंपनी। बनाम। आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य **16;**

(4) दीप चंद बनाम। उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **17;**

14 1951 एससीआर 228 15 (1955) 1 एससीआर 613 16 1958 एससीआर 1422

17 1959 एससीआर सप्लीमेंट।(2) 8

(5) महेंद्र लाल जैनी बनाम। उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **18; (6)** नगरपालिका समिति**,** अमृतसर और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य **19;**

(7) मणिपुर राज्य और अन्य। बनाम सूरजकुमार ओकराम और अन्य। **20;**

10.10.उपरोक्त निर्णयों में दी गई विभिन्न रायों से ली गई आम राय यह है कि ऐसी घोषणा कानून को अप्रवर्तनीय बनाती है और ऐसी अप्रवर्तनीयता वापस संबंधित है।इस प्रकार प्रस्तुत किया गया था

सुब्रमण्यम स्वामी (ऊपर) के मामले में वह निर्णय वापस संबंधित है

वह बिंदु जब डी. एस. पी. ई. अधिनियम में धारा 6 ए जोड़ी गई थी। 10.11।आगे प्रस्तुतिकरण यह है कि इस न्यायालय का विधि के सिद्धांत को प्रतिपादित करने वाला निर्णय सभी मामलों पर लागू होता है, भले ही इसकी विचाराधीनता का स्तर कुछ भी हो क्योंकि यह माना जाता है कि इस न्यायालय द्वारा जो प्रतिपादित किया गया है वह वास्तव में स्थापना से ही विधि है।जब तक स्पष्ट और सकारात्मक शब्दों में स्पष्ट रूप से संकेत नहीं दिया जाता है, तब तक कोई संभावित अतिनिर्णय नहीं हो सकता है।यदि सुब्रमण्यम स्वामी (उपरोक्त) के मामले में संविधान पीठ का यह घोषणा करने का कोई इरादा था कि यह लागू होने में संभावित होगा, तो इसे उसमें विशिष्ट रूप से और विवेकपूर्ण रूप से कहा जाना चाहिए था।इस तरह की घोषणा के अभाव में, स्वाभाविक धारणा यह है कि यह ब्लैकस्टोनियन सिद्धांत को लागू करने के लिए पूर्वव्यापी है।

10.12.श्री मेहता ने आई**.** सी**.** के मामलों का संदर्भ दिया।

गोलकनाथ और अन्य। बनाम पंजाब राज्य **21** और अन्र। और प्रबंध निदेशक**,** ईसीआईएल**,** हैदराबाद और अन्य बनाम बी**.** करुणाकर और अन्य **22**

प्रस्ताव है कि संभावित अतिनिर्णय का प्रयोग दुर्लभ परिस्थितियों में एक अपवाद के रूप में किया जाना चाहिए और ऐसी शक्ति का प्रयोग शायद ही कभी किया जाना चाहिए।उन्होंने आगे एम. ए. मूर्ति बनाम के मामले में इस न्यायालय के एक फैसले पर भरोसा किया है। कर्नाटक राज्य और अन्य 23 इस प्रस्ताव के लिए कि यदि संभावित अधिमूल्यांकन निर्णय में विशिष्ट रूप से प्रदान नहीं किया गया है, तो भविष्य में न्यायालयों के लिए इस तरह के निर्णय को संभावित प्रकृति का घोषित करने के लिए खुला नहीं होगा।अगर

18 ए. आई. आर. 1963 एससी 1019 19 (1969) 1 एस. सी. सी. 475

20 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 130 21 (1967) 2 एससीआर 762

22 (1993) 4 एससीसी 727 23 (2003) 7 एससीसी 517 17

उक्त निर्णय में किसी निर्णय की संभावित प्रयोज्यता प्रदान नहीं की गई है, तो यह माना जाता है कि इसका पूर्वव्यापी प्रभाव होगा और किसी भी कानून को अमान्य घोषित करना अप्रवर्तनीय होगा और इसकी स्थापना के समय से ही क़ानून की पुस्तक से अस्तित्व में नहीं होगा।सुब्रमण्यम स्वामी (उपरोक्त) के मामले में निर्णय, इसलिए, पूर्वव्यापी रूप से काम करेगा और कम से कम शुरुआत से ही अप्रवर्तनीय होगा।

10.13.अगला निवेदन यह है कि मामले में निर्णय

ए. पी. का पारेषण निगम बनाम सी. एच. प्रभाकर और अन्य 24

प्रत्यर्थी के लिए भी कोई मदद नहीं होगी क्योंकि 'पूर्व पोस्ट फैक्टो' कानूनों के खिलाफ सुरक्षा की अमेरिकी स्थिति के तहत, डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए के समान प्रावधान को हटाने से कोई नुकसान नहीं होगा।निम्नलिखित निर्णयों का संदर्भ दिया गया हैः

(1) होप बनाम यूटा क्षेत्र के लोग **25; (2)** डंकन बनाम राज्य **26;**

(3) गिब्सन बनाम मिसिसिपी **27;**

(4) थॉम्पसन बनाम मिसौरी राज्य **28; 171** यू**.** एस**. 380 (1898) (5)** जॉन मैलेट बनाम उत्तरी कैरोलिना राज्य **29;**

(6) जॉन रूनी बनाम नॉर्थ डकोटा राज्य **30; (7)** बीज़ेल बनाम ओहायो राज्य **31; (8)** डॉबर्ट बनाम फ्लोरिडा **32;**

(9) स्मिथ और अन्य बनाम डो और अन्य **33;** बीःभारत संघ के लिएः

24 (2004) 5 एससीसी 551 25 110 यूएस 574 (1884 26 152 यूएस 377 (1894) 27 162 यूएस 565 (1896) 28 171 यूएस 380 (1898) 29 181 यूएस 589 (1901) 30 196 यूएस 319 (1905) 31 269 यूएस 167 (1925) 32 432 यूएस 282 (1977) 33 538 यूएस 84 (2003)

11. श्री एस. वी. राजू, भारत के विद्वान अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल ने भारत संघ की ओर से प्रस्तुतियाँ दीं।उनकी प्रस्तुतियाँ संक्षेप में इस प्रकार हैंः

11.1.केवल इसलिए कि न्यायालय मामले पर निर्णय लेने में समय लेता है या केवल इसलिए कि वैधानिक प्रावधानों को चुनौती बाद में दी जाती है, यह एक असंवैधानिक वैधानिक प्रावधान को कानूनी या संवैधानिक नहीं बनाएगा, भले ही ऐसा प्रावधान कुछ समय के लिए काम कर रहा हो जब तक कि इसे न्यायालय द्वारा निरस्त नहीं कर दिया जाता है।इस तरह का उल्लंघन शुरू से ही अमान्य है, जैसा कि इस न्यायालय के बड़ी संख्या में निर्णयों द्वारा तय किया गया है।ऐसा शायद ही कभी होता है कि कुछ मामलों में कठिनाइयों को दूर करने के लिए और न्यायसंगत आधारों पर, इस न्यायालय ने एक असंवैधानिक क़ानून के तहत की गई कार्रवाई को संरक्षित किया था।हालाँकि, इसका मतलब यह नहीं है कि क़ानून उस अवधि के दौरान असंवैधानिक या बुरा नहीं था जब यह क़ानून की पुस्तक में था।

11.2.डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए के तहत निषेध किसी भी जांच या जांच के खिलाफ है।दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-34 की धारा 2 (जी) में "जांच" की अवज्ञा का उल्लेख करते हुए, यह प्रस्तुत किया गया था कि आरोप पत्र के सामने आने के बाद जांच शुरू होती है और यह मुकदमे के लिए एक अग्रदूत है।इस बात पर जोर दिया गया था कि इस मामले में हरदेव सिंह बनाम पंजाब राज्य 35, विशेष रूप से, रिपोर्ट के पैराग्राफ 27,29 और 39 का संदर्भ

दिया गया है।11.3.आई. डी. 1 की धारा 2 (एच) में "जांच" शब्द की अवहेलना का उल्लेख करते हुए, यह प्रस्तुत किया गया कि डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए में निहित निषेध जांच में या जांच के दौरान साक्ष्य एकत्र करने के निषेध से संबंधित है।

11.4.सुब्रमण्यम स्वामी (ऊपर) के मामले का उल्लेख करते हुए यह है

प्रस्तुत किया कि उपरोक्त मामले में निर्णय से पहले दो स्थितियां हो सकती हैं अर्थात मई, 2014 से पहले; (i) जहां साक्ष्य पहले से ही जांच के हिस्से के रूप में एकत्र किया गया है या (ii) जहां डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए में निहित निषेध के कारण साक्ष्य एकत्र नहीं किया गया है। उस पर निर्भरता रखें

एच. एन. रिशबुद और इंदर सिंह बनाम में इस न्यायालय का निर्णय। राज्य

दिल्ली **36,** जिसमें**,** पहले प्रश्न का उत्तर देते हुए**,** इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि निषेध भ्रष्टाचार निवारण की धारा **5 (4)** में निहित है।

34 संक्षेप में 'Cr.P.C.' 35 (2014) 3 SCC 92 36 (1955) 1 SCR 1150 19

अधिनियम, 1947 37 प्रकृति में अनिवार्य था, जबकि दूसरे प्रश्न का उत्तर देते हुए, इस न्यायालय ने निर्णय दिया कि पी. सी. अधिनियम, 1947 की धारा 5 (4) का उल्लंघन करते हुए की गई जांच के बाद मुकदमा अवैध नहीं होगा।यह प्रस्तुत किया गया था कि जहां एक मजिस्ट्रेट ने डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए के तहत अनुमोदन के बिना की गई जांच पर पहले ही संज्ञान ले लिया है, वहां अदालत ऐसी जांच के दौरान एकत्र किए गए साक्ष्य पर कार्रवाई कर सकती है और इस तरह के साक्ष्य के संबंध में किसी भी पूर्वाग्रह के अभाव में कार्यवाही को दूषित नहीं किया जाएगा।निम्नलिखित निर्णयों का संदर्भ दिया गया हैः

(i) फर्टिको मार्केटिंग एंड इन्वेस्टमेंट प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो और अन्य **38;**

((ii) रतिराम और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य **39;**

((iii) कर्नाटक राज्य बनाम कुप्पुस्वामी गौंदर और अन्य **40;**

11.5.यह आगे प्रस्तुत किया जाता है कि जहां जांच नहीं की गई थी और जहां मजिस्ट्रेट ने संज्ञान नहीं लिया है, वहां जांच एजेंसी आगे की जांच कर सकती है और सबूत एकत्र कर सकती है जो पहले वह डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए के प्रतिबंध के कारण नहीं कर पाती थी। हालांकि, इस तरह की आगे की जांच पीसी अधिनियम, 1988 की धारा 17 (ए) के अधीन होगी।इस प्रकार, यह प्रस्तुत किया गया कि सुब्रमण्यम स्वामी (उपरोक्त) के मामले में निर्णय के बाद, डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए में निहित निषेध ने सी. बी. आई. को जब्त कर लिया है और जहां भी लागू हो, पी. सी. अधिनियम, 1988 की धारा 17 (ए) के

अधीन मामले की जांच कर सकता है।डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए के तहत अनुमोदन प्राप्त करने की कोई आवश्यकता नहीं होगी।

11.6.डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए के तहत प्रावधान अभियोजन से कोई प्रतिरक्षा प्रदान नहीं करते हैं।यह मानते हुए कि सुब्रमण्यम स्वामी (उपरोक्त) के मामले में फैसले से पहले डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए लागू थी, यह डी. एस. पी. ई. अधिनियम के दायरे में आने वाली एजेंसियों के अलावा किसी अन्य एजेंसी द्वारा जांच पर रोक नहीं लगा सकता था। इस न्यायालय के फैसले का संदर्भ दिया गया था

ए. सी. शर्मा बनाम दिल्ली प्रशासन का मामला।आगे प्रस्तुतिकरण यह है कि

37 संक्षेप में, "पीसी अधिनियम, 1947" 38 (2021) 2 एससीसी 525 39 (2013) 12 एससीसी 316 40 एआईआर 1987 एससी 1354 41 (1973) 1 एससीसी 726

भ्रष्टाचार के मामलों से संबंधित निजी शिकायत के आधार पर मुकदमा चलाया जा सकता है और डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए के आधार पर ऐसे मामलों में कोई छूट नहीं होगी।

11.7.इसके बाद यह प्रस्तुत किया गया कि संविधान के अनुच्छेद 20 (1) का इस मामले में कोई अनुप्रयोग नहीं होगा क्योंकि जांच केवल साक्ष्य एकत्र करने की प्रक्रिया का हिस्सा है और यह न तो दोषसिद्धि के बराबर है और न ही सजा के बराबर है।राव शिव के मामले में इस अदालत के फैसले पर रिलायंस को रखा गया था।

बहादुर सिंह **(**ऊपर**)**।सीःडॉ**.** आर**.** आर**.** किशोर**-2007** के **Crl.A.No.377** में व्यक्तिगत रूप से उत्तरदाताः

12. प्रतिवादी डॉ. आर. आर. किशोर ने पूरे समय व्यक्तिगत रूप से अपना प्रतिनिधित्व किया है और हमारे सामने इस मामले पर विस्तार से बहस की है।उनकी प्रस्तुतियों का सारांश नीचे दिया गया हैः

12.1.शुरुआत में, यह प्रस्तुत किया गया था कि सी. बी. आई. भारत संघ के रुख के खिलाफ इस मामले को लड़ रही है।प्रारंभ में भारत संघ कार्यवाही में एक पक्ष नहीं था, हालाँकि, इस अपील में पारित एक आदेश के अनुसार, भारत संघ को अदालत द्वारा स्वतः संज्ञान लेते हुए एक पक्ष बनाया गया था।भारत संघ के नेतृत्व में एफ़. आई. डी. एफ. आई. ने प्रतिवादी को 25.02.2013 पर सेवा प्रदान की और जो रिकॉर्ड का हिस्सा है, स्पष्ट रूप से कहा कि सी. बी. आई. के पास केंद्र सरकार की पूर्व मंजूरी के बिना प्रतिवादी के खिलाफ जांच शुरू करने का अधिकार क्षेत्र नहीं है।इसने आगे कहा कि दिल्ली उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांकित 05.10.2006 के विवादित आदेश में लिया गया दृष्टिकोण सही है और प्रभावी रूप

से एक प्रावधान को लागू करने के उद्देश्य को दर्शाता है।इसने पैराग्राफ 23 में आगे रुख अपनाया कि डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए का उद्देश्य एक जांच तंत्र प्रदान करके तुच्छ या प्रेरित जांच से निर्णय लेने की शक्तियों से प्रभावित व्यक्तियों को सार्थक सुरक्षा प्रदान करना है। विनीत नारायण (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय द्वारा जारी किए गए निर्देशों का भी संदर्भ दिया गया था कि केंद्र सरकार सी. बी. आई. के कामकाज के लिए जवाबदेह रहेगी और यह सुनिश्चित करने के लिए सभी आवश्यक उपाय करेगी कि सी. बी. आई. प्रभावी, प्रभावी ढंग से काम करे और इसे एक गैर-पक्षपातपूर्ण एजेंसी के रूप में देखा जाए।इस तरह की दलीलों पर, यह प्रतिवादी का मामला है कि सी. बी. आई. के नेतृत्व में इस अपील में कुछ भी नहीं बचा है और इसे खारिज किया जाना चाहिए।

12.2.इसके बाद यह प्रस्तुत किया गया कि सी. बी. आई. ने न केवल डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए का उल्लंघन किया है बल्कि उक्त अधिनियम की धारा 6 और धारा 21 का भी उल्लंघन किया है।

17 और पी. सी. अधिनियम, 1988 का 18.भले ही केवल प्रतिवादी के खिलाफ पी. सी. अधिनियम, 1988 की धारा 7 के तहत प्राथमिकी दर्ज की गई थी, लेकिन फिर भी सी. बी. आई. ने न केवल प्रतिवादी के खिलाफ बल्कि उसकी पत्नी के खिलाफ भी आय के ज्ञात स्रोतों से अधिक संपत्ति रखने के संबंध में जांच की, जो यू. पी. राज्य के कर्मचारी के रूप में काम कर रही थी।

12.3.मामले के तथ्यों का उल्लेख करते हुए, यह कहा गया कि मामला पी. सी. अधिनियम की धारा 7 के तहत 16.12.2004 पर दर्ज किया गया था, उच्च न्यायालय ने 05.10.2006 पर अपील में विवादित फैसला सुनाया, याचिका सी. बी. आई. द्वारा जनवरी, 2007 में दायर की गई थी, उसके बाद अनुमति दी गई थी और भारत संघ को 27.04.2012 पर नोटिस जारी किया गया था।फरवरी, 2013 में भारत संघ के नेतृत्व में इस सम्मेलन का आयोजन किया गया था।डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए के प्रावधान क़ानून पुस्तिका में तब तक जारी थे जब तक 06.05.2014

सुब्रमण्यम स्वामी (ऊपर) के मामले में फैसला सुनाया गया था।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर, यह प्रस्तुत किया गया था कि अपील को अयोग्य बताते हुए खारिज किया जा सकता है।

12.4.इसके बाद यह प्रस्तुत किया गया कि जिस समय अपील की सुनवाई की जा रही है, उस समय पी. सी. अधिनियम, 1988 की धारा 17 (ए) के माध्यम से प्रतिवादी के हितों की रक्षा करने के लिए पहले से ही एक समान प्रावधान मौजूद है।

12.5.प्रतिवादी द्वारा प्रभाव अधिनियम के लिए भेदभाव से संबंधित एक तर्क भी उठाया गया है कि यदि अपीलार्थी का तर्क स्वीकार कर लिया जाता है, तो प्रतिवादी के साथ उन सरकारी कर्मचारियों के समूह से भेदभाव किया जाएगा जिन्होंने डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए की सुरक्षा का लाभ उठाया है और उनके खिलाफ कार्यवाही उन मामलों में बंद हो गई है जहां सक्षम प्राधिकारी ने मंजूरी देने से इनकार कर दिया है और उन मामलों के एक अन्य समूह में भी जहां अदालतों ने डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए के तहत मंजूरी के अभाव में कार्यवाही को रद्द कर दिया है।

12.6.अगला तर्क सामान्य कारण अधिनियम, 1897 42 की धारा 6 से संबंधित है जो संविधान के अनुच्छेद 367 के तहत इसकी प्रयोज्यता को देखते हुए निरसन के प्रभाव से संबंधित है।

12.7.यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि जहां कोई कानून लंबे समय से लागू है और बाद में निरस्त कर दिया जाता है, तो वह उन अधिकारों को प्रभावित नहीं करेगा जो इस तरह के कानून के अस्तित्व के दौरान अर्जित हुए थे।

42 संक्षेप में 'द एक्ट, 1897'

12.8.यह भी उनका निवेदन है कि यदि कानून को अमान्य घोषित करते समय, न्यायालय अपने पूर्वव्यापी आवेदन के लिए स्पष्ट रूप से शामिल नहीं करता है, तो इसे संभावित रूप से लागू माना जाएगा।रिलायंस को निम्नलिखित निर्णयों पर रखा गया थाः

(1) केशवन माधव मेनन **(**ऊपर**);**

(2) अशोक कुमार गुप्ता और एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **43; (3)** कैसर एल्यूमीनियम और रसायन निगम बनाम बोंजोर्नो **44; (4)** सहायक उत्पाद शुल्क आयुक्त**,** कोट्टायम और अन्य बनाम एस्तप्पन चेरियन और अन्य **45**

12.9.इसके बाद यह प्रस्तुत किया गया कि सी. बी. आई. की अपील मुख्य रूप से दो आधारों पर की गई है; कि डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए (1) अनिवार्य नहीं है; और यह कि धारा 6 ए (2) लागू होगी।उन्होंने यह भी कहा कि कोई आधार नहीं लिया गया है कि धारा 6 ए (1) असंवैधानिक या अमान्य है, इसलिए सीबीआई इस मुद्दे पर बहस नहीं कर सकती है।
12.10.अंत में, यह प्रस्तुत किया जाता है कि न केवल अनुच्छेद 20, बल्कि संविधान के अनुच्छेद 21 को भी प्रतिवादी के पक्ष में पढ़ा जाना चाहिए और उस समय मौजूद कानून के पक्ष में भी पढ़ा जाना चाहिए जब कहा जाता है कि अपराध हुआ था, उस समय उपलब्ध किसी भी सुरक्षा का लाभ दिया जाना चाहिए।

डीःश्री अरविंद दातार**,** अपीलार्थी**-**मंजीत सिंह बाली के वरिष्ठ अधिवक्ता **Crl.Appeal @SLP (CRL.) 2011** का सं**. 4364:**

13. श्री अरविंद दातार, एस. एल. पी. (सी. आर. एल.) से उत्पन्न आपराधिक अपील में अपीलार्थी-मंजीत सिंह बाली की ओर से पेश वरिष्ठ वकील हैं। 2011 के No.4364 ने निम्नलिखित प्रस्तुतियाँ कींः

13.1.संविधान पीठ को भेजे गए प्रश्न का उल्लेख करने के बाद, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री दातार ने कहा कि निम्नलिखित तीन आनुषंगिक प्रश्न भी विचार के लिए उत्पन्न होते हैं, अर्थात्ः

(i) क्या किसी कानून की घोषणा अनुच्छेद 14 या भाग-3 में निहित किसी अन्य अनुच्छेद का उल्लंघन करने वाली है, अनुच्छेद 13 (2) के तहत शुरू से ही अमान्य है?

43 (1997) 5 एस. सी. सी 201

44 494 यूएस 827 (1990)

45 भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 2009 की सिविल अपील No.5815 दिनांक 06.09.2021 23 के आदेश के माध्यम से

सी. बी. आई. बनाम आर. आर. किशोर [विक्रम नाथ, जे.] 24

((ख) कानून के लागू रहने की अवधि के दौरान की जाने वाली या छोड़ी जाने वाली कार्रवाइयों पर इस तरह के निर्णय का क्या प्रभाव है?और (iii) क्या इनके बीच कोई अंतर हैः(I) विधायी क्षमता की कमी के कारण असंवैधानिक मानी जाने वाली विधि; और (II) भाग-III या अन्य संवैधानिक सीमाओं के उल्लंघन के लिए असंवैधानिक मानी जाने वाली विधि?

13.2.संविधान के अनुच्छेद 20 (1) का उल्लेख करते हुए और पूर्वव्यापी रूप से प्रतिरक्षा से वंचित करने और उक्त संवैधानिक प्रावधान का विश्लेषण करते हुए, यह प्रस्तुत किया जाता है कि किसी अभियुक्त को जांच, जांच, मुकदमे आदि से शुरू होने वाली निर्धारित प्रक्रिया का पालन करके दोषी ठहराया जा सकता है। उनके अनुसार, यदि जांच के पहले चरण में, जांच की अनुमति तब तक नहीं दी जाती है जब तक कि एक विशिष्ट पूर्व अनुमोदन न हो क्योंकि अभियोजन से प्रतिरक्षा है, तो कोई दोषसिद्धि नहीं हो सकती है।उनके अनुसार, डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए का उल्लेख करने वाली यह प्रतिरक्षा संविधान के अनुच्छेद 20 (1) के तहत सुरक्षा का हकदार है।उनके अनुसार, सीमांत नोट दोषसिद्धि के संबंध में संरक्षण को संदर्भित करता है और वाक्यांश 'के संबंध में' की व्याख्या उस समय सभी मौजूदा प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपायों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए की जानी चाहिए जब अपराध कथित रूप से किया गया था।प्रभु दयाल देवराह के मामले में इस अदालत के फैसले पर रिलायंस को रखा गया था।

बनाम जिला मजिस्ट्रेट **46.**

13.3.डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए (1) प्रतिरक्षा का निर्माण करती है और सुरक्षा प्रदान करती है।इसे पूर्वव्यापी संशोधन द्वारा या ऐसी प्रतिरक्षा को अमान्य घोषित करने वाले निर्णय द्वारा पूर्वव्यापी रूप से दूर नहीं किया जा सकता है।

13.4.धारा 6 ए को संविधान के अनुच्छेद 14 के अधिकार से बाहर घोषित किया गया था और इस प्रकार, संविधान के अनुच्छेद 13 (2) के तहत यह उल्लंघन की सीमा तक अमान्य है।तर्क आगे "शून्य" शब्द के अर्थ और दायरे को विस्तृत करने के लिए आगे बढ़ता है जो 1951 से 1963 तक कई मामलों में विचार के लिए आया था।डॉ. दातार ने बहुत निष्पक्ष रूप से प्रस्तुत किया है कि इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि एक प्रावधान जिसे 'शून्य' माना जाता है, वह 'शून्य', 'अभी भी पैदा हुआ' या 'मृत' होगा जैसे कि यह कभी भी अस्तित्व में नहीं था।

13.5 इसके बाद यह प्रस्तुत किया गया कि एक कानून जिसे असंवैधानिक घोषित किया गया है, उसका मतलब केवल यह हो सकता है कि ऐसा कानून निष्क्रिय हो जाता है या

46 (1994) 1 एससीसी 103

इनएफ एक्टिव, एक बार घोषित किया गया और उससे पहले नहीं।निवेदन यह है कि असंवैधानिक घोषित कानून को निम्नलिखित कारणों से शून्य नहीं माना जा सकता हैः

(क) चूंकि तब तक संवैधानिकता की धारणा है जब तक कि किसी कानून को भाग-III या अन्य संवैधानिक सीमाओं के प्रावधानों का उल्लंघन करने वाला घोषित नहीं किया जाता है, यह वैध रहता है;

(ख) "उल्लंघन की सीमा तक" अभिव्यक्ति का तात्पर्य है कि उल्लंघन और उसकी सीमा की न्यायिक घोषणा होनी चाहिए।जब तक ऐसी घोषणा नहीं की जाती, तब तक किसी भी कानून को अमान्य नहीं माना जा सकता है।

(ग) यदि कोई अंतरिम रोक नहीं है, तो कानून को लागू करना होगा और सुनवाई लंबित रहने तक की गई सभी कार्रवाई गैरकानूनी नहीं होगी।

(घ) "शून्य" शब्द का उपयोग संविधान में 14 बार किया गया है।संविधान के संदर्भ में "शून्य" शब्द के उपयोग का, अनुबंध अधिनियम के विपरीत, केवल यह अर्थ है कि एक न्यायिक घोषणा एक कानून को निष्क्रिय या अप्रवर्तनीय बनाती है;

(ई) ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी ने "शून्य" शब्द को दो तरीकों से परिभाषित किया हैः(i) एक विशेषण के रूप में, इसका अर्थ है कि 'कुछ वैध या कानूनी रूप से बाध्यकारी नहीं है'; और

((ii) एक क्रिया के रूप में, इसका अर्थ है 'यह घोषणा करना कि (कुछ) वैध या कानूनी रूप से बाध्यकारी नहीं है'।

(च) संविधान के अनुच्छेद 254 के साथ पठित अनुच्छेद 249-251 के संयुक्त पठन से पता चलता है कि "शून्य" शब्द का मूल अर्थ "अमान्य" या "निष्क्रिय" है;

(छ) "शून्य" शब्द का अर्थ "निरस्त" नहीं है; एक निर्णय मूर्ति में संशोधन या परिवर्तन नहीं करता है।यह कानून-पुस्तक में बना हुआ है लेकिन इसे प्रभावी नहीं माना जा सकता है।

(ज) भाग-3 में न केवल व्यक्त मौलिक अधिकार शामिल हैं बल्कि कई व्युत्पन्न अधिकार भी शामिल हैं।इसलिए, एक असंवैधानिक कानून को शुरुआत से ही अमान्य मानना गलत होगा।

13.6.अगला निवेदन यह है कि एक प्रशासनिक अधिनियम, जब तक कि अमान्य घोषित नहीं किया जाता है, तब तक कानूनी प्रभाव जारी रहेगा और कानून को अमान्य घोषित करने से पहले की गई कार्रवाई अभी भी संरक्षित रहेगी।

13.7.इस प्रस्ताव के लिए बड़ी संख्या में निर्णय भेजे गए हैं कि अयोग्यता की घोषणा और उसके बाद होने वाले परिणाम दो अलग-अलग पहलू हैं और इस न्यायालय ने मुकदमेबाजी के लंबित रहने के दौरान की गई कार्रवाइयों का बचाव करते हुए बार-बार राहत दी है।

13.8.यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि विधायी क्षमता की कमी या संविधान के भाग-III या अन्य संवैधानिक सीमाओं का उल्लंघन करने के आधार पर अमान्य घोषित कानून का समान प्रभाव होगा।किसी भी मामले में कोई अंतर नहीं किया जा सकता है।

13.9.इसके बाद यह प्रस्तुत किया गया कि अभियोजन से संरक्षण 1969 से जारी है क्योंकि सरकारी अधिकारियों द्वारा उचित प्रशासनिक कार्य सुनिश्चित करने के लिए यह आवश्यक समझा गया था, सिवाय कुछ समय के लिए जब इस न्यायालय ने विनीत नारायण (उपरोक्त) के मामले में एकल निर्देश के प्रासंगिक खंड की वैधता को रद्द कर दिया था और उसके बाद, सुब्रमण्यम स्वामी (उपर्युक्त) के मामले में डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए।लगातार, विधायिका अनावश्यक और तुच्छ आपराधिक अभियोजनों से सरकारी अधिकारियों को इस तरह के संरक्षण का विस्तार जारी रखने के लिए विभिन्न कानूनों में प्रावधानों को शामिल कर रही है।

13.10.अंत में यह प्रस्तुत किया गया कि संभावित अतिनिर्णय के सिद्धांत और ब्लैकस्टोनियन सिद्धांत वर्तमान मामले में लागू नहीं होते हैं क्योंकि किसी भी पिछले निर्णय को खारिज नहीं किया गया है।यह संविधान के भाग-3 का उल्लंघन करने वाले कानून को असंवैधानिक घोषित करने का मामला है।

13.11.तथ्यों और परिस्थितियों में, यह प्रस्तुत किया गया था कि मंजीत सिंह बाली की अपील को अनुमति दी जानी चाहिए।

13.12.उसी पक्ष की ओर से पेश वरिष्ठ वकील श्री अमित देसाई ने भी कुछ दलीलें दीं।उन्होंने इसके दो निर्णयों पर भरोसा किया।

न्यायालय**,** अर्थात् **(i)** मोहन लाल बनाम पंजाब राज्य **47** और **(ii)** वरिंदर कुमार बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य **48**।

14. पक्षों की ओर से प्रस्तुत प्रस्तुतियों पर विचार करने के बाद, निम्नलिखित प्रश्नों पर विचार करने की आवश्यकता हैः

(i) क्या डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए प्रक्रिया का हिस्सा है या यह दोषसिद्धि या सजा का परिचय देती है?

47 (2018) 17 एससीसी 627 48 (2020) 3 एससीसी 321

((ii) क्या संविधान के अनुच्छेद 20 (1) का डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए को असंवैधानिक घोषित करने के संदर्भ में कोई संबंध या प्रासंगिकता होगी?

(iii) डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए को असंवैधानिक और संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करने वाला घोषित करने का प्रभाव पूर्वव्यापी होगा या इसे असंवैधानिक घोषित करने की तारीख से संभावित रूप से लागू होगा?

15. शुरुआत में, यह ध्यान दिया जा सकता है कि दलीलों के दौरान, वकीलों को यह स्पष्ट कर दिया गया था कि यह पीठ उसे निर्दिष्ट किए गए विशिष्ट प्रश्न का उत्तर देगी और दिए गए संदर्भ का दायरा नहीं बढ़ाएगी।यद्यपि विद्वान वकीलों और व्यक्तिगत रूप से पक्षकार को अपनी दलीलें देने की अनुमति दी गई थी और दलीलों के दौरान अपने दायरे को बढ़ाने के लिए संदर्भ के दायरे से परे मुद्दे उठाने से उनकी जाँच नहीं की गई थी, इसका मतलब यह नहीं होगा कि न्यायालय ऐसे सभी दलीलों पर विचार करेगा।यह भी स्पष्ट किया गया कि पीठ व्यक्तिगत मामलों के गुण-दोष पर विचार नहीं करेगी और प्रश्नों का उत्तर देने के बाद, मामलों को सुनवाई और निपटारे के लिए ऐसे क्षेत्राधिकारों की नियमित पीठ को सौंप दिया जाएगा।

16. इस प्रकार बनाए गए प्रश्नों पर संबंधित तर्कों और कानूनी स्थिति का विश्लेषण शुरू करने से पहले, अभियोजन शुरू करने से पहले मंजूरी प्राप्त करने के इतिहास का एक संक्षिप्त विवरण संदर्भित किया जा सकता है।

16.1.1969 में, केंद्र सरकार ने एकल निर्देश जारी किया जो विभिन्न मंत्रालयों/विभागों द्वारा सी. बी. आई. को जारी किए गए निर्देशों का एक समेकित समूह है और समय-समय पर इसमें संशोधन किया गया है।निर्देश संख्या 4.7 (3) में सिविल सेवकों की कुछ श्रेणियों के खिलाफ

जांच शुरू करने या मामला दर्ज करने के तौर-तरीकों के बारे में निर्देश दिए गए हैं और एक निश्चित स्तर से ऊपर के सरकारी और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों और राष्ट्रीयकृत बैंकों के अधिकारियों के खिलाफ जांच शुरू करने के लिए नामित प्राधिकरण की पूर्व मंजूरी का प्रावधान किया गया है।वही इस प्रकार हैः

" 4.7(3)(i) किसी भी व्यक्ति के संबंध में जो निर्णय लेने के स्तर का अधिकारी है या रहा है (केंद्र सरकार में संयुक्त सचिव या उपरोक्त के समकक्ष या ऐसे अधिकारी जो सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम में प्रतिनियुक्ति पर हैं या रहे हैं; केंद्र सरकार में उपरोक्त के संयुक्त सचिव के समकक्ष स्तर के भारतीय रिजर्व बैंक के अधिकारी, 27

एस. पी. ई. द्वारा कोई भी जांच (पी. ई. या आर. सी.) करने से पहले, जिसमें उनके संबंध में तलाशी का आदेश देना भी शामिल है, एस. पी. ई. के कार्यकारी निदेशक और एस. ई. बी. आई. के अध्यक्ष और प्रबंध निदेशक और कार्यकारी निदेशक और ऐसे बैंक अधिकारी जो राष्ट्रीयकृत बैंकों के बोर्ड से एक स्तर नीचे हैं, संबंधित मंत्रालय/विभाग के सचिव की पूर्व मंजूरी होनी चाहिए।ऐसी मंजूरी के बिना, एस. पी. ई. द्वारा कोई जांच शुरू नहीं की जाएगी।

((ii) सचिव या प्रधान सचिव के पद के किसी भी अधिकारी से संबंधित मामलों को छोड़कर, उपरोक्त आवश्यक पूर्व मंजूरी प्राप्त करने के लिए सी. बी. आई. द्वारा प्रशासनिक मंत्रालयों/विभागों को भेजे गए सभी मामलों का निपटान उनके द्वारा इस तरह के संदर्भ की प्राप्ति के दो महीने की अवधि के भीतर किया जाना चाहिए।सचिव या सरकार के प्रधान सचिव के पद के अधिकारियों के संबंध में, इस तरह के संदर्भ निदेशक, सी. बी. आई. द्वारा कैबिनेट सचिव को एक समिति के विचार के लिए दिए जाने चाहिए जिसमें कैबिनेट सचिव इसके अध्यक्ष और कानून सचिव और सचिव (कार्मिक) इसके सदस्य हों।समिति को कैबिनेट सचिव द्वारा इस तरह के संदर्भ की प्राप्ति की तारीख से दो महीने के भीतर इस तरह के सभी संदर्भों का निपटारा करना चाहिए।

((iii) जब निदेशक, सी. बी. आई. और प्रशासनिक मंत्रालय/विभाग के सचिव के बीच अतिरिक्त सचिव या समकक्ष पद तक के किसी अधिकारी के संबंध में कोई मतभेद होता है, तो मामले सी. बी. आई. द्वारा सचिव (कार्मिक) को उपरोक्त खंड (ii) में निर्दिष्ट समिति के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए भेजे जाएंगे।सचिव (कार्मिक) द्वारा इस तरह के संदर्भ की प्राप्ति की तारीख से दो महीने के भीतर समिति द्वारा इस तरह के मामले पर विचार किया जाना चाहिए और उसका निपटारा किया जाना चाहिए।

(iv) किसी भी व्यक्ति के संबंध में जो कैबिनेट सचिव है या रहा है, एस. पी. ई. द्वारा उपरोक्त मामले (i) में उल्लिखित प्रकार का कोई भी कदम उठाने से पहले आदेश के लिए प्रधानमंत्री को प्रस्तुत किया जाना चाहिए।"

उपरोक्त एकल निर्देश संख्या 4.7 (3) की वैधता पर विचार किया गया था

विनीत नारायण (ऊपर) का मामला।

16.2.अभिलेख पर रखी गई सामग्री पर विचार करने के बाद, विनीत नारायण (उपरोक्त) के मामले में तीन न्यायाधीशों की पीठ इस निष्कर्ष पर पहुंची कि

निर्देश को वैध नहीं ठहराया जा सका और तदनुसार, इसे निरस्त कर दिया गया।विनीत नारायण (ऊपर) के मामले में फैसला 18.12.1997 पर दिया गया था।16.3.एकल निर्देश संख्या 4.7 (3) के समान मंजूरी की आवश्यकता को एक अध्यादेश डब्ल्यू. ई. एफ. 25.08.1998 के माध्यम से पेश किया गया था और यह 27.10.1998 तक चला जब यह समाप्त हो गया। इसके बाद, 2003 में, केंद्रीय सतर्कता आयोग अधिनियम, 2003 (2003 का अधिनियम संख्या 45) की धारा 26 (सी) के माध्यम से एकल निर्देश संख्या 4.7 (3) के समान धारा 6 ए को डी. एस. पी. ई. अधिनियम डब्ल्यू. ई. एफ. में जोड़ा गया।49. उक्त प्रावधान को नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया हैः

“डी**.** एस**.** पी**.** ई**.** अधिनियम की धारा **6** ए

6A. जाँच या जाँच करने के लिए केंद्र सरकार की स्वीकृति।- (1) दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49) के तहत किए गए किसी भी कथित अपराध की कोई जांच या जांच नहीं करेगा, सिवाय केंद्र सरकार के पूर्व अनुमोदन के जहां ऐसा आरोप -

(क) केंद्र सरकार के संयुक्त सचिव और उससे ऊपर के स्तर के कर्मचारी; और

(ख) ऐसे अधिकारी जो केंद्र सरकार द्वारा किसी केंद्रीय अधिनियम, सरकारी कंपनियों, समितियों और उस सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण वाले स्थानीय प्राधिकरणों द्वारा या उनके तहत स्थापित निगमों में नियुक्त किए जाते हैं।

(2) उप-धारा (1) में कुछ भी निहित होने के बावजूद, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49) की धारा 7 के स्पष्टीकरण के खंड (सी) में निर्दिष्ट कानूनी पारिश्रमिक के अलावा किसी भी सहायता को स्वीकार करने या स्वीकार करने का प्रयास करने के आरोप में मौके पर ही किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी से जुड़े मामलों के लिए ऐसी मंजूरी की आवश्यकता नहीं होगी।]”

17. यह धारा दस साल से अधिक समय तक क़ानून की पुस्तक में बनी रही जब तक कि सुब्रमण्यम स्वामी (उपरोक्त) के मामले में 06.05.2014 पर निर्णय नहीं दिया गया, जिसमें इसे संविधान के भाग-III के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करने के रूप में असंवैधानिक माना गया।

49 संक्षेप में, "2003 का अधिनियम संख्या 45"

सी. बी. आई. बनाम आर. आर. किशोर [विक्रम नाथ, जे.] 30

29

18. संसद ने पी. सी. अधिनियम, 1988 डब्ल्यू. ई. एफ. में धारा 17 ए को फिर से जोड़ा।यह प्रावधान कानून की पुस्तक में बना हुआ है।इसने अभियोजन के समक्ष मंजूरी का भी प्रावधान किया, लेकिन सरकारी कर्मचारियों के किसी भी वर्गीकरण के बिना।पीसी अधिनियम, 1988 की धारा 17 ए के तहत किसी भी श्रेणी, वर्ग या स्तर के सभी सरकारी कर्मचारियों को सुरक्षा प्रदान की जाती है।उक्त प्रावधान को नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया हैः

17 उ. लोक सेवक द्वारा आधिकारिक कार्यों या कर्तव्यों के निर्वहन में की गई सिफारिशों या लिए गए निर्णय से संबंधित अपराधों की पूछताछ या जांच या जांच।-- कोई भी पुलिस अधिकारी इस अधिनियम के तहत किसी लोक सेवक द्वारा की गई किसी भी गलती की कोई जांच या जांच या जांच नहीं करेगा, जहां कथित गलती ऐसे लोक सेवक द्वारा अपने आधिकारिक कार्यों या कर्तव्यों के निर्वहन में की गई किसी भी सिफारिश या निर्णय से संबंधित है, बिना पूर्व अनुमोदन के-(ए) किसी ऐसे व्यक्ति के मामले में जो उस समय कार्यरत है या था, जब उस सरकार के संघ के मामलों के संबंध में गलती करने का आरोप लगाया गया था।

(ख) किसी ऐसे व्यक्ति के मामले में, जो उस समय कार्यरत है या था, जब किसी राज्य के मामलों के संबंध में उस सरकार के खिलाफ कार्रवाई करने का आरोप लगाया गया था;

(ग) किसी अन्य व्यक्ति के मामले में, उसे उसके कार्यालय से हटाने के लिए सक्षम प्राधिकारी के मामले में, उस समय जब अपराध किए जाने का आरोप लगाया गया थाः

बशर्ते कि अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई अनुचित लाभ स्वीकार करने या स्वीकार करने का प्रयास करने के आरोप में मौके पर ही किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी से जुड़े मामलों के लिए ऐसी मंजूरी की आवश्यकता नहीं होगीः

बशर्ते कि संबंधित प्राधिकारी इस धारा के तहत अपने निर्णय को तीन महीने की अवधि के भीतर सूचित करेगा, जो ऐसे प्राधिकारी द्वारा लिखित रूप में दर्ज किए जाने वाले कारणों के लिए, एक महीने की और अवधि के लिए बढ़ाया जा सकता है।

19. उपरोक्त से, हम देखते हैं कि दो अवसरों पर कुछ वर्षों की छोटी खिड़कियां हैं जब ऐसी कोई सुरक्षा उपलब्ध नहीं थी, अन्यथा, 1969 से अभियोजन के समक्ष मंजूरी के संबंध में सुरक्षा लागू है और आज भी जारी है।

संविधान का अनुच्छेद **20 (1)** और डी**.** एस**.** पी**.** ई**.** अधिनियम की धारा **6** ए के संदर्भ में इसकी प्रयोज्यता **(**प्रश्न सं**.1 &2).**

20. सुब्रमण्यम स्वामी (उपरोक्त) के मामले में संविधान पीठ डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए की संवैधानिक वैधता का परीक्षण कर रही थी। धारा 6 ए की दो उप-धाराएँ (1) और (2) हैं।उप-धारा (1) केंद्र सरकार की पूर्व स्वीकृति के बिना पी. सी. अधिनियम, 1988 के तहत किसी भी अपराध की किसी भी जांच या जांच से सुरक्षा प्रदान करती है, जहां आरोप संयुक्त सचिव और उससे ऊपर (खंड ए) के स्तर के केंद्र सरकार के कर्मचारियों से संबंधित है और ऐसे अधिकारी भी जिन्हें केंद्र सरकार द्वारा किसी केंद्रीय अधिनियम, सरकारी कंपनियों, समितियों और सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण वाले स्थानीय प्राधिकरणों द्वारा या उसके तहत स्थापित निगमों में नियुक्त किया जाता है।उप-धारा (2) एक गैर-अस्थाई खंड के साथ शुरू होती है जिसमें कहा गया है कि पी. सी. अधिनियम, 1988 की धारा 7 के स्पष्टीकरण के खंड (सी) में निर्दिष्ट कानूनी पारिश्रमिक के अलावा किसी भी उपदान को स्वीकार करने या स्वीकार करने का प्रयास करने के आरोप में मौके पर ही किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी से जुड़े मामलों के लिए ऐसी किसी मंजूरी की आवश्यकता नहीं होगी।उप-धारा (2) उप-धारा (1) में अवज्ञा करने वाली श्रेणी के सरकारी कर्मचारी से सुरक्षा छीन लेती है, जहां किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी किसी भी मुआवजे को स्वीकार करने या स्वीकार करने का प्रयास करने के आरोप में मौके पर ही की जानी है।

21. संविधान पीठ ने अभिनिर्धारित किया कि धारा 6 ए (1) जिसे पी. सी. अधिनियम, 1988 के तहत किए गए किसी भी अपराध की कथित जांच या जांच करने के लिए केंद्र सरकार की मंजूरी की आवश्यकता होती है, अमान्य और असंवैधानिक और संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है।एक आवश्यक परिणाम के रूप में, यह आगे घोषित किया गया कि उपरोक्त प्रावधान को लागू करने वाले 2003 के अधिनियम संख्या 45 की धारा 26 (सी) में निहित प्रावधान भी अमान्य था।

22. दिनांकित 10.03.2016 संदर्भ आदेश के लिए सुब्रमण्यम स्वामी (ऊपर) में संविधान पीठ द्वारा घोषणा के पूर्वव्यापी आवेदन को संविधान के अनुच्छेद 20 के संदर्भ में निर्धारित करने की आवश्यकता थी।इसलिए, अनुच्छेद 20 के दायरे और डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए के संदर्भ में इसकी कोई प्रयोज्यता होगी या नहीं, इस पर संक्षिप्त चर्चा करना आवश्यक होगा।

23. ऐसा करने के लिए आगे बढ़ने से पहले, यह जांच करना उचित होगा कि क्या सरकारी कर्मचारियों की कुछ श्रेणियों को सुरक्षा प्रदान करने वाली डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए, किसी भी तरह से, दोषसिद्धि के बराबर होगी या 31

वाक्य या यह विशुद्ध रूप से प्रक्रियात्मक पहलू होगा।डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए किसी भी अपराध के लिए किसी भी दोषसिद्धि को निर्धारित या प्रस्तुत नहीं करती है।यह केवल एक प्रक्रियात्मक सुरक्षा है जिसकी गणना डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए में पी. सी. अधिनियम, 1988 के तहत किसी अपराध की जांच या जांच करने के संबंध में की गई है।डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए भी किसी भी सजा को निर्धारित नहीं करती है और न ही यह किसी मौजूदा सजा को बदलती है।

24. प्रत्यर्थी या श्री दातार की ओर से यह प्रचार करने का कोई प्रयास नहीं किया गया है कि डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए प्रक्रियात्मक कानून का हिस्सा नहीं है और यह किसी भी तरह से किसी भी दोषसिद्धि का परिचय देती है या किसी भी सजा को बढ़ाती है।

कमीशन ऑफ ऑफ एंस को पोस्ट करें।इसलिए यह माना जाता है कि डी. एस. पी. ई. अधिनियम का 6 ए केवल वरिष्ठों को सुरक्षा के रूप में प्रक्रिया का एक हिस्सा है।

सरकारी कर्मचारी।इसमें कोई नया प्रावधान नहीं है और न ही यह सजा या सजा को बढ़ाता है।

25. संबंधित वकीलों के तर्कों के उचित विश्लेषण और मूल्यांकन के लिए इस स्तर पर ही संविधान के अनुच्छेद 20 को पुनः प्रस्तुत करना उपयोगी होगा।वह इस प्रकार हैः

“20. अपराध के लिए दोषसिद्धि के संबंध में संरक्षण।

(1) किसी भी व्यक्ति को अपराध के रूप में आरोपित अधिनियम के लागू होने के समय लागू कानून के उल्लंघन के अलावा किसी भी अपराध के लिए दोषी नहीं ठहराया जाएगा, और न ही उससे अधिक दंड के अधीन किया जाएगा जो अपराध के समय लागू कानून के तहत लगाया गया हो सकता है।

(2) किसी भी व्यक्ति पर एक ही अपराध के लिए एक से अधिक बार मुकदमा नहीं चलाया जाएगा और दंडित नहीं किया जाएगा।

(3) किसी भी अपराध के लिए अभियुक्त किसी भी व्यक्ति को अपने खिलाफ गवाह बनने के लिए मजबूर नहीं किया जाएगा।”

26. वर्तमान मामले में हम केवल संविधान के अनुच्छेद 20 के उप-अनुच्छेद (1) से संबंधित हैं।इसलिए, हमें उप-अनुच्छेद (2) और (3) की जांच करने की आवश्यकता नहीं है।

27. संविधान के अनुच्छेद 20 के उप-अनुच्छेद (1) में दो भाग हैं।प्रथम भाग किसी भी कानून को प्रतिबंधित करता है जो पूर्वव्यापी प्रभाव वाले कानून के उल्लंघन के लिए न्यायिक सजा निर्धारित करता है।संविधान के अनुच्छेद 20 का उप-अनुच्छेद (1) नागरिक दायित्व पर लागू नहीं होता है, जैसा कि किसी अपराधी के लिए सजा से अलग है।

ऑफ एनस।इसके अलावा, जो निषिद्ध है वह एक पूर्व पोस्ट फैक्टो कानून के तहत किसी भी अपराध के लिए दोषसिद्धि या सजा है, हालांकि मुकदमा स्वयं निषिद्ध नहीं है।संविधान के अनुच्छेद 20 के उप-अनुच्छेद (1) के उल्लंघन के कारण किसी प्रक्रिया के तहत मुकदमा उस प्रक्रिया से अलग है जो उस प्रक्रिया के दौरान या किसी अदालत द्वारा उस समय से अलग है जब अपराध किया गया था।यदि संविधान के अनुच्छेद 14 के तहत भेदभाव या किसी अन्य मौलिक अधिकार के उल्लंघन के कारण प्रक्रिया या मुकदमे को चुनौती दी जा सकती है, तो यह अलग हो सकता है।

28. संविधान के अनुच्छेद 20 के उप-अनुच्छेद (1) के पहले भाग के तहत अधिकार एक बहुत ही मूल्यवान अधिकार है, जिसे अदालतों द्वारा संरक्षित और संरक्षित किया जाना चाहिए क्योंकि यह एक संवैधानिक जनादेश है।इसकी संविधान पीठ

राव शिव बहादुर सिंह बनाम विंध्य प्रदेश राज्य **50** के मामले में अदालत ने इस पर प्रकाश डाला

फिलिप्स बनाम आयर 51 में विल्स, जे. और काल्डर बनाम बुल 52 में संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करके निषेध के अंतर्निहित सिद्धांत में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि किसी व्यक्ति को उन कृत्यों या चूक के लिए अत्यधिक अन्यायपूर्ण, अनुचित और मानवाधिकारों का उल्लंघन होगा जो किए जाने पर अनुचित नहीं थे। न्यायशास्त्र की अंग्रेजी प्रणाली में, एक लिखित संविधान के अभाव में, ऐसे कानूनों का खंडन निष्पक्षता और न्याय की सार्वभौमिक धारणाओं पर उचित ठहराया जाता है, न कि स्वयं कानून को अमान्य करने के आधार पर, बल्कि इसके लाभकारी निर्माण को मजबूर करने के रूप में जहां क़ानून की भाषा किसी भी तरह से इसकी अनुमति देती है।अमेरिकी कानून के तहत, पूर्व पोस्ट फैक्टो कानूनों को अनुच्छेद 1, धारा 9 और 10 53 के आधार पर अमान्य कर दिया जाता है। 29.राव शिव बहादुर सिंह (ऊपर) का मानना है कि संविधान के अनुच्छेद 20 के उप-अनुच्छेद (1) की भाषा संदर्भ में बहुत व्यापक है क्योंकि अनुच्छेद के तहत निषेध कानून की वैधता के पारित होने तक सीमित नहीं है, और यह कि उपयोग किए गए वास्तविक शब्दों और वे जो कुछ भी व्यक्त करते हैं, उसे पूरा प्रभाव दिया जाना चाहिए।तदनुसार, निर्णय ने 1949 के विद्या प्रदेश अध्यादेश 48 को निरस्त कर दिया था, जो हालांकि 11.09.1949 पर अधिनियमित किया गया था, जिसमें कहा गया था कि प्रावधानों को 09.04.1948 पर लागू माना जाएगा, जो कि कमीशन की तारीख से पहले की तारीख है।व्याख्या करना।

50 (1953) 2 एससीसी 111

51 1 (1870) एल. आर. 6 क्यू. बी. 1 पृष्ठ 23 और 25 पर

52 1 एल एड 648 पी पर।649 :3 यूएस (3 डेल) 386 (1798)

53 यह ध्यान दिया जा सकता है कि अमेरिकी संविधान के प्रावधान अलग-अलग शब्दों में लिखे गए हैं।हमें अनुच्छेद 20 के उप-अनुच्छेद (1) की भाषा को ध्यान में रखना चाहिए।

'प्रवृत्त विधि' शब्द में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि पूर्वव्यापी प्रभाव देने वाला अध्यादेश संविधान के अनुच्छेद 20 के उप-अनुच्छेद (1) में प्रयुक्त 'प्रवृत्त विधि' वाक्यांश के अर्थ में नहीं आएगा।'लागू कानून' को लागू माने जाने वाले कानून से नहीं, बल्कि तथ्यात्मक रूप से लागू कानून से संबंधित माना जाना चाहिए, और तभी यह 'मौजूदा कानून' के अर्थ में आएगा।जब वे संविधान 54 के अनुच्छेद 20 के उप-अनुच्छेद (1) के पीछे के हितकारी उद्देश्य और उद्देश्य को पराजित करने के इरादे से होते हैं, तो अनुच्छेद सीई या अधिनियम गलत हो जाएगा।

30. उपरोक्त तर्क और व्याख्या के सिद्धांत अनुच्छेद 20 के उप-अनुच्छेद (1) के दूसरे भाग पर समान रूप से लागू होते हैं, जिसमें कहा गया है कि एक व्यक्ति को केवल उस समय कानून के तहत निर्धारित दंड के अधीन किया जा सकता है जब उस अपराध के लिए आरोपित किया गया था।अपराध किए जाने के बाद किसी भी कानून द्वारा निर्धारित किसी भी अतिरिक्त या उच्चतर दंड को उस पर लगाया या लगाया नहीं जा सकता है।उप-अनुच्छेद दंड या सजा के प्रतिस्थापन को प्रतिबंधित नहीं करता है जो पिछले दंड से अधिक या अधिक नहीं है या आपराधिक कानून 55 की कठोरता में संशोधन नहीं करता है।

31. वर्तमान विवाद के सीमित दायरे को देखते हुए, हमें अनुच्छेद 20 के उप-अनुच्छेद (1) की अधिक विस्तार से जांच करने की आवश्यकता नहीं है।हमने संवैधानिक गारंटी का उल्लेख किया है, जो नागरिकों और व्यक्तियों को पूर्वव्यापी पूर्व-वास्तविक कानूनों से बचाती है, इसका कारण यह है कि हमारा निर्णय किसी भी तरह से संवैधानिक जनादेश को कमजोर नहीं करता है।वर्तमान संदर्भ में शामिल मुद्दा प्रक्रिया के मामले से संबंधित है, न कि संविधान के अनुच्छेद 20 के उप-अनुच्छेद (1) द्वारा कवर किए गए दो पहलुओं से।

32. पक्षों के विद्वान वकीलों ने सामान्य खंड अधिनियम, 1897 की धारा 6 का भी संक्षिप्त में उल्लेख किया है।उक्त प्रावधान को यहाँ पुनः प्रस्तुत करना उचित होगाः

“जहां यह अधिनियम, या इस अधिनियम के प्रारंभ के बाद बनाया गया कोई केंद्रीय अधिनियम या विनियमन, अब तक किए गए या इसके बाद किए जाने वाले किसी भी अधिनियम को निरस्त करता है, तो जब तक कि कोई अलग इरादा प्रकट नहीं होता है, तब तक निरसन -

54 वर्तमान मामले में, हमें जांच करने की आवश्यकता नहीं है-जब एक ऑफ-एनस एक निरंतर ऑफ-एनस है, एक पहलू और काफी बहस का विषय है।

55 टी. बरई बनाम हेनरी आह हो, (1983) 1 एससीसी 177 और प्रताप सिंह बनाम झारखंड राज्य, (2005) 3 एससीसी 551 देखें।बाद वाला निर्णय कई निर्णयों को संदर्भित करता है।

(क) ऐसी किसी भी चीज़ को पुनर्जीवित करें जो उस समय लागू या मौजूद नहीं है जब निरसन प्रभावी होता है; या

(ख) इस प्रकार निरस्त किए गए किसी अधिनियम या उसके तहत विधिवत किए गए या किए गए किसी भी कार्य के पूर्व प्रवर्तन को लागू करना; या

(ग) इस प्रकार निरस्त किसी अधिनियम के तहत अर्जित, उपार्जित या उपार्जित किसी भी अधिकार, विशेषाधिकार, दायित्व या दायित्व को लागू करना; या

(घ) इस प्रकार निरस्त किए गए किसी अधिनियम के विरुद्ध किए गए किसी अपराध के संबंध में किया गया कोई जुर्माना, ज़ब्त या सजा; या

(ङ) उपरोक्त किसी भी अधिकार, विशेषाधिकार, दायित्व, दायित्व, दंड, ज़ब्त या सजा के संबंध में कोई जांच, कानूनी कार्यवाही या उपाय करना;

और ऐसी कोई जांच, कानूनी कार्यवाही या उपाय शुरू किया जा सकता है, जारी रखा जा सकता है या लागू किया जा सकता है, और ऐसा कोई जुर्माना, ज़ब्त या सजा इस तरह से लगाई जा सकती है जैसे कि निरसन अधिनियम या विनियमन पारित नहीं किया गया था।"

उपरोक्त प्रावधान का एक सादा अध्ययन इंगित करता है कि किसी अधिनियम के निरसन से पिछले संचालन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, जब तक कि कोई अलग इरादा प्रकट न हो।यहां यह उचित रूप से ध्यान दिया जा सकता है कि वर्तमान मामले में किसी भी अधिनियम को निरस्त या पुनर्जीवित करना शामिल नहीं है, बल्कि यह एक ऐसा मामला है जिसमें इस न्यायालय की संविधान पीठ ने एक वैधानिक प्रावधान को अमान्य और असंवैधानिक घोषित किया है, जिसे संविधान के अनुच्छेद 14 द्वारा प्रभावित किया जा रहा है।इस प्रकार 1897 के अधिनियम की धारा 6 का कोई उपयोग नहीं होगा।

33. इस स्तर पर, संविधान के अनुच्छेद 20 की प्रयोज्यता के संबंध में उपरोक्त बिंदु पर मामले के कानून को संक्षिप्त रूप से संदर्भित करना उचित होगा।

(i) राव शिव बहादुर सिंह (ऊपर) के मामले में, संविधान

पीठ, 1953 तक, दो अलग-अलग परिस्थितियों में उठाए गए संविधान के अनुच्छेद 20 (1) के प्रभाव पर विचार कर रही थी।पहला यह था कि जिस न्यायालय ने दोषसिद्धि दर्ज की थी, उसे अपराध होने के बहुत बाद अधिकार क्षेत्र प्रदान किया गया था और अपराध के समय मंच अलग था।संविधान के अनुच्छेद 20 (1) के संबंध में उठाया गया दूसरा मुद्दा यह था कि

हालांकि यह प्रतिबंध मार्च और अप्रैल 1949 के महीने में लगाया गया था, लेकिन एक अध्यादेश के माध्यम से जो 35 में लागू हुआ था।

सितंबर 1949 में, उन कानूनों को अपनाया गया जिनके तहत अपीलकर्ताओं पर आरोप लगाए गए थे और इस तरह अनुच्छेद 20 (1) उनकी रक्षा करेगा और उन पर ऐसे अपराध के लिए मुकदमा नहीं चलाया जा सकता था जो बाद में पेश किए गए थे।

((ii) संविधान पीठ ने दोनों मामलों में याचिका को खारिज कर दिया।यद्यपि वर्तमान मामले में, चिंता केवल सक्षम न्यायालय के संबंध में मुद्दे से संबंधित पहले पहलू के साथ है जो प्रक्रिया का एक हिस्सा है और जिसका दोषसिद्धि या सजा के बाद पेश किए जाने से कोई लेना-देना नहीं है। संविधान पीठ ने उपरोक्त मुद्दे के संबंध में निम्नलिखित निर्णय दिया:

"9. इस संदर्भ में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अनुच्छेद 20 के तहत जो वर्जित है वह केवल पूर्व कार्योत्तर कानून के तहत दोषसिद्धि या सजा है।

और न कि उसके मुकदमे में।एक प्रक्रिया के तहत इस तरह के मुकदमे की सुनवाई के समय या अदालत द्वारा जो प्राप्त किया गया था, उससे अलग है, जो उस समय की क्षमता से अलग है, वास्तव में नहीं हो सकता है।

असंवैधानिक माना जाए।अपराध करने के आरोपी व्यक्ति को किसी विशेष अदालत या किसी विशेष प्रक्रिया द्वारा मुकदमा चलाने का कोई मौलिक अधिकार नहीं है**,** सिवाय इसके कि भेदभाव के रूप में कोई संवैधानिक आपत्ति या किसी अन्य मौलिक अधिकार का उल्लंघन शामिल हो सकता है।

(जोर दिया गया**) "**

((ग) दूसरे पहलू के संबंध में भी, संविधान पीठ ने अपीलार्थी का पक्ष नहीं लिया और यह अभिनिर्धारित किया कि विंध्य प्रदेश राज्य के पास पूर्वव्यापी रूप से लागू किए जा रहे कानून बनाने की शक्ति है और इस कारण से भी कि उक्त प्रावधान पहले से ही 1948 में ही उक्त राज्य में अस्तित्व में था और लागू था।

(iv) एस. के. घोष (उपरोक्त) के मामले में संविधान पीठ पश्चिम बंगाल राज्य के नेतृत्व में एक अपील पर विचार कर रही थी, जिसमें उच्च न्यायालय के फैसले की शुद्धता पर आरोप लगाया गया था, जिसके द्वारा दो माननीय न्यायाधीशों ने प्रतिवादी एस. के. घोष की अपील को अनुमति दी थी, लेकिन अलग-अलग कारणों से।जे. मित्तर ने ज़ब्ती की कार्यवाही को दरकिनार करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 20 (1) की प्रयोज्यता पर विचार नहीं किया था।उसी कारण से अलग रखा गया था

कि 1944 के अध्यादेश के माध्यम से आपराधिक कानून, 1944 के संशोधन की धारा 12 के तहत कोई निर्धारण नहीं किया गया था, जबकि न्यायमूर्ति भट्टाचार्य ने इस आधार पर ज़ब्ती को दरकिनार कर दिया कि 1944 का अध्यादेश 1 जुलाई को लागू हुआ था, जबकि अपराध करने के लिए प्रभावी अवधि जुलाई 1944 में समाप्त हो गई थी।

(v) संविधान पीठ ने पश्चिम बंगाल राज्य की अपील को यह मानते हुए स्वीकार कर लिया कि संबंधित न्यायाधीशों द्वारा लिए गए दोनों विचार सही नहीं थे।

(vi) संविधान पीठ ने एक बार फिर पूर्ववर्ती संविधान पर भरोसा किया

राव शिव बहादुर सिंह (ऊपर) के मामले में पीठ का फैसला और

यह निर्धारित किया गया कि उक्त मामले में ज़ब्त करने का दोषसिद्धि या सजा से कोई लेना-देना नहीं होगा और इसलिए अनुच्छेद 20 (1) लागू नहीं हो सकता है।उपरोक्त निर्णय से प्रासंगिक उद्धरण नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया हैः

“16. हम इस संबंध में राव शिव बहादुर सिंह बनाम विंध्य प्रदेश राज्य का उल्लेख कर सकते हैं जहां अनुच्छेद 20 (1) पर विचार किया गया था।उस मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि "पूर्व कार्योत्तर कानूनों के तहत दंड के लिए दोषसिद्धि और अधीनता के खिलाफ संविधान के अनुच्छेद 20 (1) में निहित निषेध संविधान के बाद के कानूनों के संचालन में सीमित नहीं है, बल्कि लंबित कार्यवाही के लिए उनके आवेदन में संविधान के समक्ष पारित पूर्व कार्योत्तर कानूनों पर भी लागू होता है।"इस न्यायालय ने आगे कहा कि

कि अनुच्छेद **20** केवल पूर्व कार्योत्तर कानून के तहत दोषसिद्धि या सजा को प्रतिबंधित करता है**,** न कि उसके मुकदमे को।एक प्रक्रिया के तहत इस तरह के मुकदमे को असंवैधानिक नहीं माना जा सकता है जो उस समय की क्षमता से अलग है जो उस समय या अदालत द्वारा प्राप्त किया गया था।इसलिए**,** यह मामला दर्शाता है कि यह केवल भारतीय दंड संहिता की धारा **53** में अवज्ञा के रूप में दोषसिद्धि और दंड है जो अनुच्छेद **20 (1)** के भीतर शामिल हैं और एक पूर्व कार्योत्तर कानून के तहत दोषसिद्धि या एक पूर्व कार्योत्तर कानून के तहत सजा अनुच्छेद **20 (1)** द्वारा प्रभावित होगी**;** लेकिन धारा **13 (3)** के प्रावधानों का दोषसिद्धि या सजा से कोई लेना**-**देना नहीं है जिससे हम वर्तमान अपील में संबंधित हैं और इसलिए हमारी राय में अनुच्छेद **20 (1)** का धारा **13 (3)** के तहत पारित आदेशों पर कोई आवेदन नहीं हो सकता है।

(जोर दिया गया**) "**

(vii) रतन लाल (उपर्युक्त) के मामले में, 2 के बहुमत से इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठः1 इस बात का विचार था कि मृत्युदंड के बाद बनाया गया कोई कानून जो न तो मृत्युदंड देता है और न ही सजा को बढ़ाता है, बल्कि पहली बार मृत्यु होने पर सुधार के लिए एक लाभकारी कानून था, लाभ पहली बार दोषी ठहराए गए ऐसे आरोपी को दिया जा सकता है, यानी, मृत्यु दंडन अधिनियम 1958 के तहत, और यह कि संविधान के अनुच्छेद 20 (1) का कोई अनुप्रयोग नहीं होगा।

(viii) सुकुमार पाइन **(**ऊपर**)** के मामले में संविधान पीठ ने राव शिव बहादुर सिंह **(**ऊपर**)** में पूर्ववर्ती संविधान पीठ पर भरोसा करते हुए आगे कहा कि संविधान के अनुच्छेद **20 (1)** में अंतर्निहित कोई सिद्धांत नहीं है जो किसी भी प्रक्रिया के अधिकार को निहित अधिकार बनाता है।फैसले के प्रासंगिक उद्धरण को नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया हैः

“20. ...जैसा कि इस न्यायालय ने राव शिव बहादुर सिंह बनाम विंध्य प्रदेश राज्य मामले में कहा है कि अपराध करने के आरोपी व्यक्ति को किसी विशेष न्यायालय या किसी विशेष प्रक्रिया द्वारा मुकदमा चलाने का कोई निहित अधिकार नहीं है, सिवाय इसके कि भेदभाव के रूप में कोई संवैधानिक आपत्ति है या किसी अन्य मौलिक अधिकार का उल्लंघन शामिल है।यह अच्छी तरह से माना जाता है कि "किसी भी व्यक्ति को किसी भी प्रक्रिया में निहित अधिकार नहीं है" (मैक्सवेल 11 वें संस्करण के माध्यम से।p.216), और हम कोई कारण नहीं देखते हैं कि इस सामान्य नियम को क्यों होना चाहिए

वर्तमान मामले में प्रबल नहीं है।संविधान के अनुच्छेद **20** में अंतर्निहित कोई सिद्धांत नहीं है जो किसी भी प्रक्रिया के अधिकार को निहित अधिकार बनाता है।

(जोर दिया गया**) "**

((ix) जी. पी. नैय्यर (उपर्युक्त) के मामले में, इस न्यायालय की दो-न्यायाधीशों की पीठ ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 5 (3) के निरसन और पुनरुद्धार के प्रभाव पर विचार करते हुए यह विचार व्यक्त किया कि धारा 5 (3) ने अपने आप में कोई प्रावधान या प्रावधान नहीं किया है।यह केवल साक्ष्य का नियम था जबकि 1947 के अधिनियम की धारा 5 (1) या 5 (2) के तहत सबूत का प्रावधान किया गया था। इस प्रकार, उसमें अपीलार्थी का यह दावा कि संविधान के अनुच्छेद 20 (1) द्वारा पूर्वव्यापी रूप से प्रभावित भ्रष्टाचार विरोधी कानून (संशोधन) विधेयक, 1967 द्वारा धारा 5 (3) का पुनरुद्धार किसी भी योग्यता के बिना था।

रिलायंस को पहले के संविधान पीठ के फैसले पर रखा गया था

राव शिव बहादुर सिंह (ऊपर) में कि यह केवल दृढ़ विश्वास था

या किसी पूर्व कार्योत्तर कानून के तहत सजा जो संविधान के अनुच्छेद 20 (1) के तहत निषिद्ध थी और मुकदमे को प्रभावित नहीं करेगी।इस न्यायालय ने जो कहा वह यह था कि अपीलार्थी संविधान के अनुच्छेद 20 (1) को लागू करके उस प्रक्रिया पर आपत्ति नहीं कर सकता जो उस समय मौजूद थी।यह ध्यान दिया जा सकता है कि यह संसद द्वारा संशोधित किए जा रहे कानून से संबंधित एक निर्णय था न कि अदालत द्वारा असंवैधानिक घोषित किए जा रहे कानून से।उक्त निर्णय का प्रासंगिक उद्धरण इस प्रकार हैः

"उस प्रक्रिया के पुनरुद्धार पर कानून में कोई आपत्ति नहीं हो सकती है जो उस समय लागू थी जब प्रतिबंध लगाया गया था।संशोधन का प्रभाव यह है कि धारा 5 की उप-धारा (3), जो 1964 के अधिनियम के प्रारंभ से पहले थी, लागू होगी और यह माना जाएगा कि यह हमेशा अपराधों के विचारण के संबंध में लागू हुई है।यह हो सकता है कि यदि इस उपबंध द्वारा एक नया उपबंध बनाया गया हो, तो अनुच्छेद 20 (1) के तहत निषेध लागू हो सकता है।लेकिन इस मामले में, जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, जो किया जाता है वह सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6 (1) के प्रभाव को दोहराने से ज्यादा कुछ नहीं है। विद्वान वकील श्री गर्ग ने प्रस्तुत किया कि प्रक्रिया में भारी संशोधन करके और इसे पूर्वव्यापी प्रभाव देने से, पूर्वव्यापी रूप से एक नया प्रभाव पैदा किया जा सकता है।यह तर्क दिया गया था कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 5 (3) में दिए गए सबूत के बोझ को स्थानांतरित करके, एक नया प्रभाव पैदा किया जाता है।हमारे लिए इस बड़े सवाल पर विचार करना अनावश्यक है कि क्या कुछ परिस्थितियों में प्रक्रिया को पूर्वव्यापी प्रभाव देना पूर्वव्यापी रूप से एक गैर-प्रभाव पैदा करने के बराबर हो सकता है।वर्तमान में

यदि पुरानी प्रक्रिया को पुनर्जीवित किया जाता है और कोई नई प्रक्रिया पूर्वव्यापी प्रभाव नहीं दी जाती है।ई. एफ. ई. सी. टी. को दी गई प्रक्रिया ऐसी प्रकृति की नहीं है जिसके परिणामस्वरूप एक नई ऑफ-एनस का निर्माण होता है।

(जोर दिया गया) "

(x) सोनी देवराजभाई बाबूभाई (ऊपर) के मामले में, तथ्य थे

कि 13.08.1986 पर, उसमें अपीलार्थी की बेटी की मृत्यु हो गई थी।इसके बाद, भारतीय दंड संहिता की धारा 304-बी को 1986 के संशोधन अधिनियम संख्या 43 के माध्यम से भारतीय दंड संहिता में पेश किया गया था।

यह 19 नवंबर, 1986 को प्रभावी हुआ।अभियुक्त (अपील में प्रतिवादी) ने एक याचिका दायर की कि उस पर आई. पी. सी. की धारा 304-बी के तहत आरोप या मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है क्योंकि अपराध के समय ऐसा प्रावधान मौजूद नहीं था।इसे बहुत बाद में पेश किया

गया था।निचली अदालत ने उक्त आवेदन को खारिज कर दिया।तथापि, उच्च न्यायालय अभियुक्त-प्रत्यर्थी के तर्क से सहमत हो गया और अभिनिर्धारित किया कि उस पर धारा 304-बी के तहत मुकदमा नहीं चलाया जा सकता क्योंकि यह अपराध करने के बाद बनाया गया एक नया अपराध था।उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण को बरकरार रखा और शिकायतकर्ता-अपीलार्थी के तर्क को खारिज कर दिया।

(xi) अजय अग्रवाल (उपर्युक्त) के मामले में, इस न्यायालय की दो-न्यायाधीशों की पीठ ने भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड अधिनियम, 1992-56 की धारा 11 बी के प्रावधानों पर विचार करते हुए, जिसे 1995 में जोड़ा गया था, यह अभिनिर्धारित किया कि यह प्रावधान प्रक्रियात्मक प्रकृति का है और इसे पूर्वव्यापी रूप से लागू किया जा सकता है।यह विचार था कि किसी भी कानून के लिए जो प्रक्रिया के मामलों को लागू करता है, वही सभी कार्यों पर लागू होगा, जो लंबित होने के साथ-साथ भविष्य में भी लागू होगा और किसी भी प्रक्रियात्मक संशोधन को अनुचित नहीं कहा जा सकता है और तदनुसार, अपीलीय न्यायाधिकरण के दृष्टिकोण से असहमत था, और अध्यक्ष, SEBI द्वारा पारित आदेश को बरकरार रखा कि SEBI अधिनियम की धारा 11B को पूर्वव्यापी सम्मिलन को संविधान के अनुच्छेद 20 (1) द्वारा प्रभावित नहीं किया जा सकता है।न्यायालय ने एक बार फिर संविधान के फैसले पर भरोसा किया

राव शिव बहादुर सिंह (ऊपर) के मामले में पीठ।

34. हालाँकि, विद्वान वकील श्री दातार ने यह दावा करने की कोशिश की है कि संविधान के अनुच्छेद 20 के साथ सीमांत नोट दोषसिद्धि के संबंध में संरक्षण को संदर्भित करता है और इसलिए, कुछ भी जो दोषसिद्धि के लिए पूर्व-आवश्यकता हो सकती है या हो सकती है, वह संविधान के अनुच्छेद 20 (1) के अंतर्गत आती है।जाँच, जाँच और मुकदमा पूर्व-आवश्यक होने के कारण एक अनिवार्य हिस्सा है जिसके आधार पर, न्यायालय अंततः एक अपराध के लिए दोषसिद्धि पर पहुँच सकता है।इस प्रकार यह प्रस्तुत किया गया कि यदि जांच, जांच और मुकदमा किसी भी कारण से दूषित हो जाता है, तो दोषसिद्धि को बनाए नहीं रखा जा सकता है।
35. विद्वान वकील, श्री दातार का प्रस्तुत करना बहुत दूर की बात है और संविधान के अनुच्छेद 20 (1) को बहुत व्यापक और खुला विस्तार देता है।

इसे केवल सीमांत नोट के कारण प्रक्रियात्मक पहलुओं तक विस्तारित करना।जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, पुनरावृत्ति की कीमत पर भी, यह ध्यान दिया जा सकता है कि संविधान का अनुच्छेद 20 (1) केवल दोषसिद्धि और सजा तक ही सीमित है।यह किसी भी प्रक्रियात्मक भाग

का उल्लेख नहीं करता है जिसके परिणामस्वरूप दोषसिद्धि या दोषमुक्त और/या सजा हो सकती है।तदनुसार, श्री दातार के तर्क को स्वीकार नहीं किया जा सकता है।संविधान के अनुच्छेद 20 (1) को लागू न करने के बाद प्रक्रिया में परिवर्तन 1953 से तय कानून रहा है जिसे राव की संविधान पीठ के फैसले में प्रतिपादित किया गया था

शिव बहादुर सिंह **(**ऊपर**)**।

36. ऊपर दर्ज कारणों से**,** यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अनुच्छेद

20(1) डी**.** एस**.** पी**.** ई**.** अधिनियम की धारा **6** ए की वैधता या अयोग्यता के लिए संविधान की कोई अनिवार्यता नहीं है।

सुब्रमण्यम स्वामी **(**ऊपर**) (**प्रश्न संख्या **3)** के मामले में निर्णय का पूर्वव्यापी या संभावित अनुप्रयोग।

37. सुब्रमण्यम स्वामी (उपरोक्त) के मामले में संविधान पीठ ने डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए को इस आधार पर असंवैधानिक घोषित कर दिया कि यह सरकारी कर्मचारियों के वर्गीकरण के कारण संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करती है, जिस पर उक्त प्रावधान लागू होना था।डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए की अयोग्यता विधायी अक्षमता या किसी अन्य संवैधानिक उल्लंघन के आधार पर नहीं है।विनीत नारायण (उपर्युक्त) मामले में इस न्यायालय ने निर्णय दिया था कि एकल निर्देश संख्या 4.7 (3) अमान्य है और इसे इस आधार पर निरस्त कर दिया गया था कि एक प्रशासनिक निर्देश द्वारा कानून के तहत प्रदत्त सी. बी. आई. की शक्तियों में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।यह उक्त घोषणा के कारण था कि 2003 में डी. एस. पी. ई. अधिनियम में धारा 6 ए को जोड़ा गया था।

38. निर्धारण के लिए सवाल यह है कि क्या किसी संवैधानिक न्यायालय द्वारा किसी कानून को असंवैधानिक घोषित करने का प्रभाव पूर्वव्यापी होगा या संभावित रूप से लागू होगा।

39. संविधान के अनुच्छेद 13 (2) में प्रयुक्त 'शून्य' शब्द की व्याख्या पर बहुत जोर दिया गया है।यही शब्द 'शून्य' संविधान के अनुच्छेद 13 (1) में भी प्रयोग किया गया है।पक्षकारों द्वारा जिन निर्णयों पर भरोसा किया गया है, जिन पर जल्द ही चर्चा की जाएगी, वे विभिन्न संविधान पीठों और सात-न्यायाधीशों की पीठ और अन्य नियमित पीठों द्वारा कथित शब्द 'शून्य' की व्याख्या से संबंधित हैं।ऑक्सफोर्ड शब्दकोश में, 'शून्य' शब्द का अर्थ है कि कुछ कानूनी रूप से मान्य या बाध्यकारी नहीं है, जब एक विशेषण के रूप में उपयोग किया जाता है और आगे जब एक क्रिया के रूप में उपयोग किया जाता है, तो इसका अर्थ यह घोषित करना है कि कुछ वैध या कानूनी रूप से बाध्यकारी नहीं है।

40. संविधान के अनुच्छेद 13 में दो उप-अनुच्छेद (1) और (2) हैं।वह इस प्रकार हैः

“13(1).इस संविधान के प्रारंभ से ठीक पहले भारत के राज्य क्षेत्र में लागू सभी कानून, जहां तक वे इस भाग के प्रावधानों के साथ असंगत हैं, ऐसी असंगति की सीमा तक शून्य होंगे।

13(2).राज्य ऐसी कोई विधि नहीं बनाएगा जो इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों को छीन ले या कम कर दे और इस खंड का उल्लंघन करते हुए बनाई गई कोई विधि, उल्लंघन की सीमा तक, शून्य होगी।”

41. अनुच्छेद 13 (1) के तहत संविधान के प्रारंभ से पहले सभी मौजूदा कानून, जहां तक वे भाग-3 के प्रावधानों के साथ असंगत हैं, विसंगति की सीमा तक शून्य होंगे।इसके अलावा, अनुच्छेद 13 (2) के अनुसार, राज्य को ऐसा कोई भी कानून बनाने से प्रतिबंधित किया गया है जो भाग-3 द्वारा प्रदत्त अधिकारों को छीनता है या कम करता है और इसके अलावा इस खंड का उल्लंघन करते हुए बनाया गया कोई भी कानून उल्लंघन की सीमा तक अमान्य होगा।अनुच्छेद 13 (2) किसी भी कानून के निर्माण को प्रतिबंधित करता है, इसलिए यह संविधान के प्रारंभ के बाद बनाए गए कानूनों से संबंधित होगा, जैसा कि वर्तमान मामला है।वर्तमान मामले में, जैसा कि यह अभिनिर्धारित किया गया है कि डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए संविधान के भाग-3 के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करती है, इसलिए यह अमान्य होगा।"शून्य" शब्द की व्याख्या इस न्यायालय के 1951 से लेकर हाल तक के कई फैसलों में की गई है और इसे अलग-अलग नाम दिया गया है।

जैसे 'गैर एस्ट', 'शून्य एब इनिशियो' 'अभी भी पैदा हुआ' और 'अप्रवर्तनीय'।

42. इस स्तर पर मामले के कानून का एक संक्षिप्त संदर्भ आवश्यक होगा।यह उल्लेख करना सार्थक होगा कि पहले की सात-न्यायाधीशों की पीठ और संविधान पीठ के फैसले संविधान के अनुच्छेद 13 (1) से संबंधित हैं, जो संविधान के प्रारंभ के समय पहले से मौजूद कानूनों से संबंधित हैं।संविधान के अनुच्छेद 13 (2) से संबंधित बाद के निर्णय हैं।हालाँकि, अनुच्छेद 13 (2) में उपयोग किए गए 'शून्य' शब्द की व्याख्या करते समय अनुच्छेद 13 (1) के निर्णयों पर भरोसा किया जाता है।

(i) केशवन माधव मेनन (उपरोक्त) के मामले में तथ्य थे -

कि उसके तहत अपीलार्थी के खिलाफ अभियोजन शुरू किया गया था

भारतीय प्रेस (आपातकालीन शक्तियां) अधिनियम, 1931 57 का प्रावधान उक्त अधिनियम की धारा 15 (1) के तहत आवश्यक प्राधिकरण के बिना जारी किए गए प्रकाशन के लिए, और इस तरह, उसी अधिनियम की धारा 18 (1) के तहत दंडनीय अपराध बन गया। यह अभियोजन 1949 में ही शुरू किया गया था और 1949 के मामले संख्या 1102/पी के रूप

में दर्ज किया गया था।उक्त कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान, भारत का संविधान 26.01.1950 पर लागू हुआ।अपीलार्थी ने इसमें आपत्ति जताई कि 1931 के अधिनियम के प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 13 (1) के साथ पठित अनुच्छेद 19 (1) (ए) के अधिकार क्षेत्र से बाहर हैं और इसलिए यह अमान्य और निष्क्रिय होगा क्योंकि उसे बरी किया जा सकता है। उच्च न्यायालय का विचार था कि संविधान के प्रारंभ की तारीख को लंबित कार्यवाही को लागू नहीं किया जाएगा, भले ही 1931 का अधिनियम संविधान के भाग III द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों के साथ असंगत हो।हालाँकि, यह संविधान के अनुच्छेद 13 (1) के तहत 26.01.1950 के बाद ही अमान्य हो जाएगा।((ii) इस न्यायालय की सात न्यायाधीशों की पीठ ने तीन अलग-अलग राय दीःन्यायमूर्ति सुधी रंजन दास ने मुख्य न्यायाधीश कनिया, न्यायमूर्ति एम. पतंजलि शास्त्री और न्यायमूर्ति एन. चंद्रशेखर अय्यर के साथ बहुमत का फैसला लिखा; न्यायमूर्ति मेहर चंद महाजन ने बहुमत के विचार से सहमत एक अलग राय लिखी; न्यायमूर्ति फजल अली ने न्यायमूर्ति बी. के. के साथ एक असहमतिपूर्ण फैसला लिखा। मुखर्जी उनसे सहमत हैं।बहुमत उच्च न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण से सहमत था।तदनुसार उन्होंने अपील को खारिज कर दिया।रिपोर्ट का पैरा 16, जिसमें उक्ति है, नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया हैः

“16. जैसा कि पहले ही ऊपर बताया गया है, अनुच्छेद 13 (1) पूरी तरह से इसके संचालन में संभावित है और चूंकि इसका कोई पूर्वव्यापी प्रभाव डालने का इरादा नहीं था, इसलिए उस अनुच्छेद में ऐसा कोई बचत खंड डालने की कोई आवश्यकता नहीं थी।अनुच्छेद 13 (1) का प्रभाव किसी अस्थायी क़ानून की समाप्ति या बाद के क़ानून द्वारा किसी क़ानून के निरसन के प्रभाव से काफी अलग है।जैसा कि पहले ही समझाया जा चुका है, अनुच्छेद 13 (1) में केवल सभी असंगत मौजूदा कानूनों को रद्द करने या प्रस्तुत करने का प्रभाव है जो वास्तविक या निरर्थक हैं और केवल अभ्यास के संबंध में किसी भी कानूनी बल या बाध्यकारी प्रभाव से रहित हैं

57 संक्षेप में, "1931 अधिनियम"

संविधान के प्रारंभ की तारीख को और उसके बाद मौलिक अधिकारों का।इसका कोई पूर्वव्यापी प्रभाव नहीं है और इसलिए, यदि संविधान के प्रारंभ से पहले किसी ऐसे कानून के प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए कोई कार्य किया गया था, जो संविधान के बाद किसी भी मौलिक अधिकार के प्रयोग के संबंध में शून्य हो जाता है, तो जहां तक पिछले अधिनियम का संबंध है, असंगत कानून का सफाया नहीं किया जाता है, क्योंकि यह कहना कि यह है, कानून को पूर्वव्यापी प्रभाव देना होगा।ऐसा कोई मौलिक अधिकार नहीं है कि किसी व्यक्ति पर संविधान लागू होने से पहले किए गए अपराध के लिए मुकदमा नहीं चलाया जाएगा और उसे दंडित नहीं किया जाएगा।

जहां तक पिछले अधिनियमों का संबंध है, कानून मौजूद है, इसके बावजूद कि यह मौलिक अधिकारों के भविष्य के प्रयोग के संबंध में मौजूद नहीं है।"

हालांकि, न्यायमूर्ति फजल अली का विचार था कि हालांकि इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि अनुच्छेद 13 (1) में कोई पूर्वव्यापी संचालन और लेनदेन नहीं होंगे जो अतीत और बंद हैं, और जो अधिकार पहले से ही निहित हैं, वे अछूते रहेंगे।तथापि, असंबद्ध मामलों के संबंध में जो अभी भी निर्धारित नहीं किए गए थे जब संविधान लागू हुआ था, और कार्यवाही शुरू नहीं हुई थी, या संविधान के प्रवर्तन के समय लंबित थी और अभी तक किसी अन्य निर्णय के लिए मुकदमा नहीं चलाया गया था, इस प्रश्न का उत्तर यह होगा कि जिस कानून को संविधान द्वारा पूरी तरह से अप्रभावी घोषित किया गया है, उसे अब लागू नहीं किया जा सकता है।सटीक रूप से, पैराग्राफ नं। एस. सी. सी. ऑनलाइन से संदर्भित रिपोर्ट का 63 भाग यहाँ पुनः प्रस्तुत किया गया हैः

"इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि अनुच्छेद 13 (1) का कोई पूर्वव्यापी संचालन नहीं होगा, और जो लेन-देन अतीत और बंद हैं, और जो अधिकार पहले से ही निहित हैं, वे अछूते रहेंगे।लेकिन असंवैधानिक मामलों के संबंध में जो अभी भी निर्धारित नहीं किए गए थे जब संविधान लागू हुआ था, और कार्यवाही के संबंध में चाहे अभी तक शुरू नहीं हुआ था, या संविधान के प्रवर्तन के समय लंबित था और अभी तक एक अंतिम निर्णय के लिए मुकदमा नहीं चलाया गया था, बहुत गंभीर सवाल उठता है कि क्या एक कानून जिसे संविधान द्वारा पूरी तरह से असंवैधानिक घोषित किया गया है, अभी तक लागू किया जा सकता है।"

(iii) बेहराम खुर्शीद पेसिकाका (ऊपर) के मामले में, एक सात -

इस न्यायालय की न्यायाधीश पीठ बॉम्बे राज्य बनाम एफ. एन. के मामले में की गई घोषणा के कानूनी प्रभाव पर विचार कर रही थी।

बलसरा 58, जिसके तहत बॉम्बे निषेध अधिनियम (1949 का अधिनियम 25) की धारा 13 खंड (बी) के हिस्से को असंवैधानिक घोषित किया गया था।बहुमत की राय थी कि इस तरह के प्रावधान को अमान्य और असंवैधानिक घोषित करने का मतलब केवल यह होगा कि यह निष्क्रिय और अप्रभावी है और इस प्रकार अप्रवर्तनीय है।

(iv) एम. पी. वी. सुंदररामियर एंड कंपनी (उपरोक्त) के मामले में संविधान पीठ बिक्री कर कानून उल्लंघन अधिनियम, 1956 की वैधता पर विचार कर रही थी।पैराग्राफ 41 में, कानून के विधानमंडल की क्षमता के भीतर नहीं होने के कारण या दोनों के बीच भिन्न कुछ संवैधानिक प्रतिबंधों को समाप्त करने के कारण असंवैधानिक होने के बीच के अंतर पर विचार करते हुए। प्रासंगिक उद्धरण यहाँ नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया हैः

“41. अब, किसी कानून की असंवैधानिकता के प्रभाव के प्रश्न पर विचार करते समय, यह याद रखना आवश्यक है कि असंवैधानिकता या तो इसलिए उत्पन्न हो सकती है क्योंकि कानून किसी मामले के संबंध में विधायिका की क्षमता के भीतर नहीं है, या क्योंकि मामला स्वयं इसकी क्षमता के भीतर है, इसके प्रावधान कुछ संवैधानिक प्रतिबंधों को समाप्त करते हैं।एक संघीय संविधान में जहां विधायी शक्तियों को विभिन्न निकायों के बीच वितरित किया जाता है, किसी विशेष कानून को लागू करने के लिए विधायिका की क्षमता इस बात पर निर्भर होनी चाहिए कि क्या उस कानून का विषय संविधान अधिनियम द्वारा उस विधायिका को सौंपा गया है।इस प्रकार, संविधान की सूची 1, अनुसूची 7 में प्रविष्टि पर राज्य का कानून पूरी तरह से अक्षम और शून्य होगा।लेकिन कानून अपनी क्षमता के भीतर किसी विषय पर हो सकता है, उदाहरण के लिए, सूची II में एक प्रविष्टि, लेकिन यह पारित किए जाने वाले कानून के चरित्र पर संविधान द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों का उल्लंघन कर सकता है, उदाहरण के लिए, संविधान के भाग III में अधिनियमित सीमाएँ।यहाँ भी, तिरस्कार की सीमा तक कानून अमान्य हो जाएगा।इस प्रकार, एक विषय पर एक कानून

विधायिका और उसकी क्षमता के भीतर एक कानून की क्षमता के भीतर नहीं है**,** लेकिन संवैधानिक सीमाओं का उल्लंघन करने वाले दोनों की अदालत में समान गणना होती है**;** वे दोनों हैं

उनमें से अप्रभावी।लेकिन क्या इससे यह पता चलता है कि दोनों

कानून एक ही गुणवत्ता और चरित्र के होते हैं, और सभी उद्देश्यों के लिए एक ही आधार पर खड़े होते हैं।यह प्रश्न अमेरिकी न्यायालयों में कई निर्णयों में विचार का विषय रहा है, और प्राधिकरण की प्रधानता इस विचार के पक्ष में है कि किसी ऐसे मामले पर कानून जो विधायिका की क्षमता के भीतर नहीं है, एक शून्य है, लेकिन किसी विषय पर एक कानून जो अपनी क्षमता के भीतर है लेकिन संवैधानिक निषेधों के प्रतिकूल है, केवल अप्रवर्तनीय है।इस भेद का वर्तमान चर्चा पर एक भौतिक प्रभाव पड़ता है।यदि कोई कानून विधायिका के अधिकार क्षेत्र में नहीं है, तो यह पूरी तरह से अमान्य है, और बाद में उस कानून को विधायिका को सौंपने से उस कानून में जीवन की सांस लेने का प्रभाव नहीं पड़ेगा जो अभी भी पैदा हुआ था और इस विषय पर एक नया कानून आवश्यक होगा।लेकिन यदि कानून विधायिका को सौंपे गए किसी मामले के संबंध में है, लेकिन इसके प्रावधान संवैधानिक निषेधों की अवहेलना करते हैं, हालांकि उन प्रतिबंधों के कारण कानून अप्रवर्तनीय होगा, जब एक बार उन्हें हटा दिया जाता है, तो कानून फिर से अधिनियमित किए बिना प्रभावी हो जाएगा।

(जोर दिया गया**)** "

अंतर यह था कि जहां कोई कानून विधायिका के अधिकार क्षेत्र में नहीं है, वह पूरी तरह से अमान्य है।लेकिन जहां किसी कानून को असंवैधानिक घोषित किया जाता है, तो यह संविधान के अनुच्छेद 13 (2) के अनुसार अप्रवर्तनीय और उस हद तक अमान्य होगा।

(v) दीप चंद (उपरोक्त) के मामले में चुनौती उत्तर प्रदेश परिवहन सेवा (विकास) अधिनियम, 1955 की वैधता के संबंध में थी।संविधान की संविधान पीठ ने संविधान के अनुच्छेद 13 (2) की योग्यता पर चर्चा करने के बाद यह विचार व्यक्त किया कि खंड का सादा अध्ययन, बिना किसी उचित संदेह के, इंगित करता है कि निषेध मामले की जड़ तक जाता है और कानून बनाने की राज्य की शक्ति को सीमित करता है; निषेध के बावजूद बनाया गया कानून एक मृत कानून है।प्रासंगिक उद्धरण जो पैराग्राफ 13 (आकाशवाणी संदर्भ से) का हिस्सा है, नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया हैः

“13. ...इसलिए, किसी विधानमंडल को अनुच्छेद 13 में निहित निषेधाज्ञा का अवमूल्यन करते हुए कोई कानून बनाने की कोई शक्ति नहीं है।अनुच्छेद 13 (1) संविधान के प्रारंभ से पहले भारत के क्षेत्र में लागू कानूनों और ऐसे कानूनों से संबंधित है जहां तक वे

भाग III के प्रावधानों के साथ असंगत हैं, ऐसी असंगति की सीमा तक शून्य होगी।इसलिए खंड, संविधान-पूर्व कानूनों की वैधता को मान्यता देता है और केवल यह घोषणा करता है कि उक्त कानून उसके बाद भाग III के साथ उनकी असंगति की सीमा तक अमान्य हो जाएंगे; जबकि क्ल।(2) उस अनुच्छेद का राज्य पर भाग III द्वारा प्रदत्त अधिकारों को छीनने या संक्षिप्त करने के लिए कानून बनाने पर प्रतिबंध लगाता है और घोषणा करता है कि इस खंड के उल्लंघन में बनाए गए कानून, उल्लंघन की सीमा तक, शून्य होंगे।इन दोनों खंडों में स्पष्ट अंतर है।सी. एल. के तहत।(1), एक पूर्व-संविधान कानून भाग III के प्रावधानों के साथ इसकी असंगतता की सीमा को छोड़कर रहता है; जबकि, कोई संविधान के बाद का नहीं है।

कानून को भाग **III** के प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए बनाया जा सकता है**,** और इसलिए कानून**,** उस हद तक**,** हालांकि बनाया गया है**,**

इसकी शुरुआत।यदि इस स्पष्ट अंतर को ध्यान में रखा जाए, तो उठे हुए अधिकांश बादल दूर हो जाते हैं।जब सी. एल.(2) अनुच्छेद 13 के स्पष्ट और असंदिग्ध शब्दों में कहा गया है कि कोई भी राज्य ऐसा कोई कानून नहीं बनाएगा जो भाग 3 द्वारा प्रदत्त अधिकारों को छीन या कम कर दे, यह राज्य को यह तर्क देने में लाभ नहीं देगा कि खंड में कानून बनाने की शक्ति में कटौती शामिल नहीं है या यह कि यह केवल

जाँच करें लेकिन निषेध नहीं।कुछ कानून बनाने वाले किसी राज्य के खिलाफ संवैधानिक निषेध को समानता या अन्य कानूनों के प्रावधानों पर निर्णयों से प्रेरणा लेकर कम नहीं किया जा सकता है।

संविधान; न ही हम इस तर्क की सराहना कर सकते हैं कि अनुच्छेद 13 (2) की दूसरी पंक्ति में "कोई भी कानून" शब्द इस तरह के निषेध के कारण बने कानून के अस्तित्व को दर्शाते हैं।ऐसा कहा जाता है कि कोई कानून तभी अस्तित्व में आ सकता है जब वह बनाया जाता है और इसलिए उस खंड के उल्लंघन में बनाया गया कोई भी कानून यह मानता है कि बनाया गया कानून अमान्य नहीं है।यह तर्क सूक्ष्म हो सकता है लेकिन सही नहीं है।उस खंड में "कोई भी कानून" शब्दों का अर्थ केवल निषेध के बावजूद पारित या तथ्यात्मक रूप से बनाया गया अधिनियम हो सकता है।इस तरह के उल्लंघन का परिणाम उस खंड में बताया गया है।एक साधारण पठन

खंड का खंड बिना किसी उचित संदेह के इंगित करता है कि निषेध मामले की जड़ तक जाता है और कानून बनाने की राज्य की शक्ति को सीमित करता है**;** निषेध के बावजूद बनाया गया कानून एक मृत कानून है।

(जोर दिया गया**) "**

सी. बी. आई. बनाम आर. आर. किशोर [विक्रम नाथ, जे.] 48

47

(vi) महेंद्र लाल जैनी (ऊपर) के मामले में, फिर से एक संविधान

उत्तर प्रदेश भूमि कार्यकाल (हस्तांतरण का विनियमन) अधिनियम, 1952 की वैधता के साथ-साथ वन अधिनियम, 1957 में 1956 के संशोधन से संबंधित पीठ को अनुच्छेद 13 (1) और 13 (2) के बीच के अंतर का विश्लेषण करने का अवसर मिला।पैराग्राफ एन. ओ. एस. रिपोर्ट के 23 और 24 में प्रासंगिक चर्चा है।पैराग्राफ नंबर 23 में, यह निर्धारित किया गया था कि एक मामले में शून्यता के बीच का अंतर इस परिस्थिति से उत्पन्न होता है कि यह एक पूर्व-संवैधानिक कानून था और दूसरा संविधान के बाद का कानून है।हालांकि, शून्य शब्द का अर्थ दोनों उप-अनुच्छेदों में उपयोग किया जाता है जो स्पष्ट रूप से कानून को वास्तविक और निरर्थक बनाता है, दोनों मामलों में किसी भी कानूनी बल या बाध्यकारी प्रभाव से रहित है। पैराग्राफ नं. रिपोर्ट के 24 में, पीठ संविधान में पूर्व-संवैधानिक कानूनों के संबंध में एक संशोधन के प्रभाव पर विचार करने के लिए आगे बढ़ती है, जिसमें कहा गया है कि विसंगति को दूर करने के परिणामस्वरूप ग्रहण के सिद्धांत के आधार पर ऐसे कानूनों का पुनरुद्धार होगा क्योंकि पहले से मौजूद कानून अभी भी पैदा नहीं हुए थे।हालाँकि, संविधान के बाद के कानूनों के मामले में, वही अभी भी पैदा होगा, और इस तरह ग्रहण का सिद्धांत संविधान के बाद के कानूनों पर लागू नहीं होगा।वर्तमान मामले में ग्रहण का सिद्धांत लागू नहीं होता है, क्योंकि डी. एस. पी. ई. अधिनियम की धारा 6 ए को असंवैधानिक करार दिया गया है।असंवैधानिकता के परिणामस्वरूप अवैधता को हटाकर इस प्रावधान को फिर से वैध बनाने का कोई प्रयास नहीं किया गया है।हम

पैराग्राफ एन. ओ. एस. को पारस्परिक रूप से पुनः प्रस्तुत कर सकते हैं। उक्त रिपोर्ट के 23 और 24 नीचे दिए गए हैंः

“23. तथापि, उत्तरदाताओं की ओर से यह आग्रह किया जाता है कि यह अनुच्छेद 13 (1) में 'शून्य' शब्द को एक अलग अर्थ देगा।अनुच्छेद 13 (2) की तुलना में।हम ऐसा नहीं सोचते हैं। अनुच्छेद 13 (1) में "शून्य" शब्द का अर्थ केशव माधव मेनन के मामले में और फिर बेहराम खुर्शीद पेसिकाका के मामले में माना गया था। बाद के मामले में, महाजन, सी. जे. ने बताया कि केशव माधव मेनन के मामले (3) में बहुमत ने स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 13 (1) में "शून्य" शब्द का अर्थ यह नहीं था कि क़ानून निरस्त हो गया था और इसलिए क़ानून की पुस्तक से मिटा दिया गया था। न ही इसका यह अर्थ था कि उक्त क़ानून शुरू से ही अमान्य था।यह, हमारी राय में यदि हम सम्मान के साथ ऐसा कह सकते हैं, तो अनुच्छेद 13 (1) की भाषा से स्पष्ट रूप से मिलता है, जो यह मानती है कि मौजूदा कानून इसके अलावा अच्छे हैं।

मौलिक अधिकारों के साथ असंगति की सीमा तक।इसके अलावा अनुच्छेद 13 (1) के साथ असंगति के कारण किसी मौजूदा कानून के शुरू से ही अमान्य होने का कोई सवाल ही नहीं हो सकता था, क्योंकि वे उस समय सक्षम विधानसभाओं द्वारा पारित किए गए थे जब वे अधिनियमित किए गए थे।इसलिए, यह इंगित किया गया कि अनुच्छेद 13 (1) का प्रभावी अधिनियम मौजूदा कानूनों के संबंध में जहां तक वे असंवैधानिक थे, केवल यह था कि उन्होंने उन्हें अमान्य कर दिया, और उन्हें 'अप्रभावी और निरर्थक और किसी भी कानूनी बल या बाध्यकारी से रहित' बना दिया।

इफ् इक्ट् "।सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए "शून्य" शब्द का अर्थ अनुच्छेद **13 (1)** में समान है जैसा कि अनुच्छेद **13 (2)** में है**,** अर्थात्**,** जो कानून शून्य थे वे अप्रत्यक्ष रूप से वास्तविक और निरर्थक थे और किसी भी कानूनी बल या बाध्यकारी प्रभाव से रहित थे।लेकिन संविधान पूर्व कानून अनुच्छेद **13 (1)** के लागू होने के कारण अपनी स्थापना से ही अमान्य नहीं हो सकते थे। अनुच्छेद **13 (2)** में 'शून्य' शब्द का अर्थ भी वही है।**,** कि कानून अप्रभावी और निरर्थक हैं और अधिनियम को बाध्य करने पर किसी भी कानूनी बल से रहित हैं**,** यदि वे अनुच्छेद **13 (2)** का उल्लंघन करते हैं।लेकिन इस मामले में संविधान से पहले और संविधान के बाद के कानूनों के बीच एक महत्वपूर्ण अंतर है।संविधान**-**पूर्व कानूनों की शून्यता है।शुरुआत से नहीं।जब संविधान लागू हुआ तो इस तरह की शून्यता हावी हो गई**;** और इसलिए**,** वे कुछ समय के लिए और कुछ उद्देश्यों के लिए अस्तित्व में थे और संचालित थे**;** संविधान के बाद के कानूनों की शून्यता उनकी शुरुआत से ही है और इसलिए वे अस्तित्व में नहीं रह सकते हैं।

कोई भी उद्देश्य।एक मामले में शून्यता और दूसरे में शून्यता के बीच यह अंतर इस परिस्थिति से उत्पन्न होता है कि एक संविधान पूर्व कानून है और दूसरा संविधान के बाद का कानून है; लेकिन शून्य शब्द का अर्थ दोनों मामलों में समान है, अर्थात्, कानून अप्रभावी और निरर्थक है और किसी भी कानूनी बल या बाध्यकारी प्रभाव से रहित है।

24. फिर सवाल आता है कि दो प्रकार के मामलों में संविधान के संशोधन का क्या प्रभाव पड़ता है।जहां तक संविधान पूर्व कानूनों का संबंध है, संविधान के संशोधन के परिणामस्वरूप ग्रहण के सिद्धांत के आधार पर ऐसे कानूनों का पुनरुद्धार होगा, जैसा कि भीकाजी नारायण के मामले (1) में निर्धारित किया गया है, क्योंकि पहले से मौजूद कानून अभी पैदा नहीं हुए थे और अभी भी मौजूद होंगे, हालांकि 49 के कारण ग्रहण हो गए थे।

पहले से मौजूद मामलों को नियंत्रित करने में विसंगति।लेकिन मामले में

संविधान के बाद के कानूनों में, वे अभी भी उल्लंघन की सीमा तक पैदा होंगे।और यह भेद ही है जिसके परिणामस्वरूप ग्रहण के सिद्धांत को संविधान के बाद के कानूनों में लागू करना असंभव हो जाता है, क्योंकि ऐसा कुछ भी पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता है जो कभी नहीं हुआ था।

कोई भी वैध अस्तित्व।इसलिए हमारी राय है कि "शून्य" शब्द का अर्थ अनुच्छेद 13 (1) और अनुच्छेद 13 (2) दोनों में समान है, और ग्रहण के सिद्धांत का अनुप्रयोग एक मामले में और दूसरे मामले में नहीं, अनुच्छेद 13 के दो भागों में "शून्य" शब्द को अलग-अलग अर्थ देने पर निर्भर नहीं करता है। यह अनुच्छेद 13 (1) और अनुच्छेद 13 (2) के बीच अंतर्निहित अंतर से उत्पन्न होता है जो इस तथ्य से उत्पन्न होता है कि एक संविधान पूर्व कानूनों से संबंधित है, और दूसरा संविधान के बाद के कानूनों से संबंधित है, जिसके परिणामस्वरूप एक मामले में ग्रहण का सिद्धांत लागू होगा जबकि दूसरे मामले में कानून अभी भी पैदा हुए हैं-ग्रहण के सिद्धांत को लागू करने की कोई गुंजाइश नहीं होगी।हालाँकि, दो खंड एक ही अनुच्छेद का हिस्सा हैं, लेकिन उनमें प्रयुक्त भाषा के साथ-साथ उनकी विषय-वस्तु और दायरे में भी एक महत्वपूर्ण अंतर है।प्रथम खंड द्वारा संविधान कुछ संचालन कानूनों के अस्तित्व को मान्यता देता है और उन्हें मौलिक अधिकारों के साथ उनकी असंगति की सीमा तक शून्य घोषित किया जाता है। अगर ऐसी कोई घोषणा नहीं होती तो ये कानून जारी रहते।इसलिए, संविधान-पूर्व कानूनों के मामले में संविधान में संशोधन क्या करता है, छाया कास्ट को हटाना है।

इस घोषणा के द्वारा।इस प्रकार कानून पुनर्जीवित होता है।हालाँकि, दूसरे खंड के मामले में, जो संविधान के बाद के कानूनों पर लागू होता है, संविधान उनके अस्तित्व को मान्यता नहीं देता है, क्योंकि उन्हें बनाने के लिए निषेध की अवहेलना की गई थी।इस तरह की अवज्ञा अधिनियमित कानून को अमान्य बना देती है।इसलिए उनके मामले में संविधान के संशोधन से कोई पुनरुद्धार नहीं हो सकता है, हालांकि कानून बनाने की बाधा को हटा दिया जाता है, जहां तक संशोधन के बाद की अवधि का संबंध है।संविधान के बाद की विधियों के मामले में, उन

विधियों के बीच अंतर करना शायद ही उचित होगा जो पूरी तरह से शून्य हैं-उदाहरण के लिए, जो अनुच्छेद **31** का उल्लंघन करते हैं और जो काफी हद तक शून्य हैं लेकिन आंशिक रूप से मान्य हैं, उदाहरण के लिए, अनुच्छेद **19** का उल्लंघन करने वाले कानून।सैद्धांतिक रूप से, कानून

बाद की श्रेणी के अंतर्गत आने वाले वैध या गैर-नागरिक हो सकते हैं; लेकिन यह एक पूरी तरह से अवास्तविक विचार है और हमें ऐसा लगता है कि काल्पनिक और पांडित्यपूर्ण विचारों के बल पर उक्त कानूनों का ऐसा राष्ट्रीय स्तर पर आंशिक वैध अस्तित्व उनके लिए ग्रहण के सिद्धांत के अनुप्रयोग को उचित नहीं ठहरा सकता है।संविधान के बाद के सभी कानून जो अनुच्छेद **13 (2)** के पहले भाग में निहित अनिवार्य निषेधाज्ञा का उल्लंघन करते हैं, उतने ही अमान्य हैं, जितने विधायी क्षमता के बिना पारित कानून हैं, और ग्रहण का सिद्धांत उन पर लागू नहीं होता है।इसलिए हमारा मानना है कि

संविधान (चौथा संशोधन) अधिनियम को इस मामले में ग्रहण के सिद्धांत के आधार पर स्थानांतरण अधिनियम पर लागू नहीं किया जा सकता है इसलिए यह इस प्रकार है कि स्थानांतरण अधिनियम असंवैधानिक है क्योंकि यह अनुच्छेद 31 (2) का पालन नहीं करता था, जैसा कि पारित होने के समय था।इसलिए इसे निरस्त करना होगा और याचिकाकर्ता को तदनुसार अपने पक्ष में घोषणा करनी होगी।

(जोर दिया गया**) "**

(vii) मणिपुर राज्य (ऊपर) के मामले में, हाल ही में तीन-न्यायाधीश

इस न्यायालय की पीठ मणिपुर उच्च न्यायालय के उस फैसले के खिलाफ एक अपील पर विचार कर रही थी जिसमें मणिपुर संसदीय सचिव (नियुक्ति, वेतन और भत्ते और विविध प्रावधान) अधिनियम, 2012 (2012 का मणिपुर अधिनियम संख्या 10) के साथ-साथ निरसन अधिनियम, 2018 को भी असंवैधानिक घोषित किया गया था।न्यायमूर्ति एल. नागेश्वर राव ने पीठ की ओर से बोलते हुए कहा कि जहां किसी कानून को असंवैधानिक माना जाता है, तो ऐसा लगता है कि यह कभी नहीं था और किसी भी कानून को किसी भी कारण से असंवैधानिक माना जाता है, चाहे वह विधायी क्षमता की कमी के कारण हो या मौलिक अधिकारों का उल्लंघन, शुरुआत से ही अमान्य होगा।उक्त निर्णय के पैराग्राफ संख्या 22 और 23 को नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:

“22. जहाँ किसी क़ानून को असंवैधानिक घोषित किया जाता है, वह इस प्रकार है -

अगर ऐसा कभी न होता।इसके तहत अधिकारों का निर्माण नहीं किया जा सकता है; अनुबंध जो अपने विचार के लिए इस पर निर्भर करते हैं, वे अमान्य हैं; यह किसी भी व्यक्ति के लिए सुरक्षा का गठन नहीं करता है जिसने इसके तहत कार्य किया है और किसी को भी निर्णय लेने से पहले इसका पालन करने से इनकार करने के लिए दंडित नहीं किया जा सकता है।

बनाया गया।फील्ड, जे. ने नॉर्टन बनाम शेल्बी काउंटी में कहा कि "एक असंवैधानिक अधिनियम कानून नहीं है, यह कोई अधिकार प्रदान नहीं करता है, यह 51 लागू करता है।

कोई कर्तव्य नहीं है, यह कोई सुरक्षा प्रदान नहीं करता है, यह कोई अधिकार नहीं बनाता है; यह कानूनी चिंतन में, ऐसा निष्क्रिय है जैसे कि इसे कभी पारित नहीं किया गया था।

23. एक असंवैधानिक कानून, चाहे वह या तो विधायी क्षमता की कमी के कारण हो या भारत के संविधान के भाग **III** के तहत गारंटीकृत मौलिक अधिकारों का उल्लंघन हो, शुरुआत से ही अमान्य है।

बेहराम खुर्शीद पेसिकाका बनाम बॉम्बे राज्य में, इस न्यायालय की एक संविधान पीठ द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि राज्य की कानून बनाने की शक्ति एक लिखित मौलिक कानून द्वारा प्रतिबंधित है और मौलिक कानून का अधिनियमित और विरोध करने वाला कोई भी कानून विधायी प्राधिकरण से अधिक है और इस प्रकार, एक शून्य है।की घोषणा

विधायी शक्ति की कमी के साथ-साथ मौलिक अधिकारों के संक्षिप्त होने के कारण लाई गई असंवैधानिकता की घोषणा से आई असंवैधानिकता शक्ति की जड़ तक जाती है, जिससे कानून अपनी स्थापना में ही शून्य हो जाता है।यह न्यायालय

दीप चंद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में निम्नलिखित प्रस्तावों का सारांश दिया गया है:

"(क) चाहे संविधान विधायिका को विषयवार कानून बनाने की शक्ति प्रदान करता है या नकारात्मक रूप से इसे किसी भी मौलिक अधिकार का उल्लंघन करने से रोकता है, वे विधायी शक्ति के अभाव के केवल दो पहलुओं का प्रतिनिधित्व करते हैं;

(ख) संविधान स्पष्ट शब्दों में सातवीं अनुसूची की सूचियों में प्रविष्टियों के संबंध में संविधान के अन्य प्रावधानों के अधीन कानून बनाने की विधायिका की शक्ति बनाता है और इस प्रकार संविधान के भाग III में निर्धारित सीमाओं द्वारा उक्त शक्ति को सीमित या कम करता है।

(ग**)** परिसर से यह पता चलता है कि अपमान में या उस शक्ति से अधिक बनाया गया कानून शुरू से ही अमान्य होगा।

(जोर दिया गया**)** "

इसके अलावा पिछली घोषणाओं द्वारा निर्धारित कानून पर चर्चा करने के बाद, पैराग्राफ नं. 28 यह कहना कि कानून की अदालत द्वारा असंवैधानिक घोषित एक क़ानून अभी भी पैदा होगा और सभी उद्देश्यों के लिए गैर-निहित होगा।रिपोर्ट के पैराग्राफ 28 को नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया हैः

“28. इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून से जिन सिद्धांतों का निष्कर्ष निकाला जा सकता है, जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट किया गया हैः

I. एक कानून जो एक सक्षम विधायिका द्वारा बनाया गया है, तब तक वैध है जब तक कि इसे अदालत द्वारा असंवैधानिक घोषित नहीं किया जाता है।

II. कानून की अदालत द्वारा किसी क़ानून को असंवैधानिक घोषित करने के बाद**,** यह सभी उद्देश्यों के लिए गैर**-**कानूनी है।

III. कानून की घोषणा में, संभावित अतिनिर्णय के सिद्धांत को इस न्यायालय द्वारा पिछले लेनदेन को पहले के निर्णयों के तहत असंवैधानिक ठहराए गए कानूनों के तहत बचाने के लिए लागू किया जा सकता है।

IV. किसी कानून को असंवैधानिक घोषित किए जाने के बावजूद, इस न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए राहत को ढाला जा सकता है।

(जोर दिया गया**) "**

43. उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि एक बार जब किसी कानून को असंवैधानिक घोषित कर दिया जाता है, जो संविधान के भाग-3 का उल्लंघन करता है, तो इसे संविधान के अनुच्छेद 13 (2) और इसकी व्याख्या को देखते हुए शुरू से ही अमान्य, अभी भी जन्म, अप्रवर्तनीय और गैर-कानूनी माना जाएगा।

आधिकारिक घोषणाओं द्वारा।इस प्रकार**,** सुब्रमण्यम स्वामी **(**उपरोक्त**)** के मामले में संविधान पीठ द्वारा की गई घोषणा पूर्वव्यापी होगी।डी**.** एस**.** पी**.** ई**.** अधिनियम की धारा **6** ए को इसके शामिल होने की तारीख यानी **11.09.2003** से लागू नहीं माना जाता है।

44. जैसा कि इस निर्णय के पूर्व भाग में संकेत दिया गया है, इस न्यायालय ने अन्य मुद्दों और तर्कों पर ध्यान नहीं दिया है जो संदर्भ आदेश के अनुरूप नहीं हैं।45. तदनुसार, मामलों को सुनवाई और गुण-दोष के आधार पर निर्णय लेने के लिए उपयुक्त पीठ के समक्ष रखा जा सकता है।

द्वारा तैयार किए गए हेडनोटः

मामलों को उपयुक्त पीठ के समक्ष रखा जाए

बिभूति भूषण बोस

सहायता दीःशुभांशु दास, एलसीआरए